बुन्देल-वैभव-ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

बुन्देल-वैभव

अथवा

बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवियों का साङ्गोपाङ्ग इतिहास

(प्रथम भाग)

[सचित्र और सटिप्पण]

ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥

(कश्चित्कविः)

काव्य-ग्रन्थ-कर्त्ता तथा, कीर्तित-काव्य-पुमान ;
बन्दनीय वे अमर जग, पाते सुयश महान ।

'शङ्कर'

लेखक

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

प्रकाशक—
श्रीरामेश्वरप्रसाद द्विवेदी 'रमेश'
बुन्देल-वैभव-ग्रन्थमाला
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)



प्रथमावृत्ति १०००	शिवरात्रि संवत् १९९० वि०	दाम २॥)



सत्यव्रत शर्मा द्वारा
शान्ति प्रेस, शीतलागली,
आगरा में मुद्रित ।

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चित्र-सूची



आज जो 'बुन्देल-वैभव' नामक ग्रन्थ हमारे सम्मुख है वह हमारी तुच्छ-बुद्धि में हिन्दी का एक अनुपम रत्न कहलावेगा इसमें हमें अणु-मात्र का भी सन्देह नहीं है। इसमें हमारे मित्र तथा हिन्दी के प्राचीन प्रेमी और सत्कवि, पंडित गौरीशंकरजी द्विवेदी 'शंकर' ने बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवियों की आलोचनात्मक जीवनियाँ तथा उनके ग्रन्थों का हाल एवं उनसे विस्तृत उद्धरण बड़ी कुशलतापूर्वक दिए हैं। एक प्रकार से इसे हिन्दी साहित्य के एक विशेष चमत्कारी भाग का इतिहास ही मानना चाहिए। जिस ग्रन्थ में गोस्वामी तुलसीदासजी, केशवदास, बलभद्र, बिहारीलाल, श्रीपति, मंडन, हरिकेश, बोधा, पद्माकर, मंचित, ठाकुर, खुमान, बैताल, प्रतापसाहि, पजनेस, मैथिलीशरण गुप्त, मुंशी अजमेरी, वियोगी हरि प्रभृत सत्कवियों तथा अनेकानेक अन्य प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों की रचनाएँ प्रचुरता से पाई जायँ तथा उनके चरित्रों एवं कविता की गम्भीर गवेषणा-पूर्ण आलोचना विद्यमान हो उसे हिन्दी का इतिहास अवश्य ही कहा जायगा।

बुन्देलखण्ड उत्तरीय भारत का एक बड़ा ही प्रतिभाशाली भाग है जिसमें इस समय अँगरेज़ी के चार ज़िले (झाँसी, बाँदा, हमीरपुर और जालौन), नौ देशी रियासतें, (ओरछा,

दतिया, पन्ना, चरखारी, छतरपुर, समथर, अजयगढ़, बिजावर और बावनी-कदौरा), तथा २२–२३ अन्य छोटी-बड़ी रियासतें, जागीरें इत्यादि सम्मलित हैं। इसका विस्तृत इतिहास मुंशी श्यामलालजी ने उर्दू में लिखा है तथा अँगरेजी गजेटियरों में जानने योग्य प्रायः सभी सामग्री पाई जाती है। उसके अवलोकन से विदित होगा कि इस चमत्कारी भूमि में अनेकानेक प्रसिद्ध राजा और शूर होगए हैं जिनकी समानता केवल राजपूताने से ही दी जा सकती है। महाराजा भारतीचन्द, मधुकरशाह, रुद्रप्रताप, वीरसिंह देव प्रथम, छत्रसाल, पहाड़सिंह, विक्रमाजीत इत्यादि प्रतापी और नामी योद्धा इसी बुन्देलखण्ड में होगए हैं तथा भ्रातृ-भक्त-शिरोमणि हरिदौलजी भी ओड़छा ही राज्य के थे। इधर कविता में तो कहना ही क्या है। जिस पवित्र भूमि को स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने जन्म से अभिमानित किया हो, जिसमें नवरत्नों में से तीन रत्न पाए जाते हों और जिसमें उच्चाति-उच्च श्रेणी के अनेक अन्य कवि होगए हों उस बुन्देल-भूमि की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। वास्तव में बुन्देलखण्ड को बरबस वीर एवं साहित्य भूमि मानना ही पड़ता है।

बड़े हर्ष का विषय है कि इस ग्रन्थ के लेखक पं॰ गौरीशंकरजी द्विवेदी भी बुन्देलखण्डान्तर्गत तालबेहट (जिला झाँसी) के रहने वाले हैं। आपने इसे लिखकर स्वदेश एवं स्वभाषा प्रेम का अच्छा परिचय दिया है। इसमें जिन कवियों को स्थान दिया

गया है वे या तो इसी बुन्देलभूमि में उत्पन्न हुए थे अथवा चिर-काल तक यहाँ के निवासी होने के कारण उनका इस भूमि से ऐसा घनिष्ट सम्पर्क रहा है कि उन्हें बुन्देलखण्डी मानना ही पड़ता है। इसमें केवल उन्हीं हिन्दी सेवियों की रचनाएँ रक्खी गई हैं जिन्होंने पद्य में काव्य किया है। यद्यपि गद्य को भी काव्य ही की परिभाषा में माना गया है तथापि कवि शब्द से लोग प्रायः पद्य-लेखकों ही को सम्बोधित करते हैं। तो भी द्विवेदीजी ने अपनी भूमिका में गद्य-लेखकों की नामावली दे दी है तथा महिला कवियों का भी अच्छा वर्णन एकत्र लिख दिया है। कवियों के जीवन-चरित्र एवं कवित्व शक्ति की विवेचना करने में द्विवेदीजी ने अच्छा श्रम किया तथा पूर्ण सफलता पाई है। ऐसे ही कविताओं के उदाहरण चुनने में आपने अपनी काव्य-पटुता का ख़ासा परिचय दिया है। निदान यह ग्रन्थ-रत्न संग्रह करने योग्य बन पड़ा है और इसके पढ़ जाने से कोई मनुष्य हिन्दी-साहित्य का ज्ञाता माना जा सकेगा।

द्विवेदीजी ने इसका समर्पण बुन्देल केशरी, हिन्दी के प्रसिद्ध ज्ञाता, लेखक एवं प्रेमी श्री सवाई महेन्द्र महाराजा वीरसिंह देव द्वितीय, सरामद राजाहाय बुन्देलखण्ड के कर-कमलों में किया है सो सभी प्रकार से उपयुक्त है। श्री महाराजा साहब बहादुर का हिन्दी भाषा और कविता पर अगाध प्रेम है और श्रीमान् हिन्दी हितार्थ निरन्तर कुछ न कुछ किया ही करते हैं। ऐसे उत्साही महाराजा को इसका समर्पित होना बहुत ही उचित है।

द्विवेदीजी इसमें यदि मेरा चित्र न देते तो ठीक था पर उनके उत्साह को भंग करना मुझे उचित न प्रतीत हुआ। इस ग्रन्थ में मेरा नाम एवं मेरी कविता के उदाहरण रखना भी द्विवेदीजी ने आवश्यक समझा है यद्यपि मैं इसे उनकी भूल मानता हूँ। अन्य दो-चार बातों में भी मैं उनसे पूर्ण रीति से सहमत नहीं हूँ पर सभी ओर ध्यान देने से मैं उनके श्रम को अत्यन्त श्लाघ्य समझता हूँ।

टीकमगढ़

श्यामबिहारी मिश्र
("मिश्र-बन्धु" में एक)



मेजर श्री०

पं० विन्ध्येश्वरीप्रसादजी पाराडेय

बी० ए० एल-एल० बी०, F. R. E. S., M. R. A. S.

Ex-Chairman Municipal Board, Bareily.

दीवान ओरछा राज्य

की

शुभाभिलाषा







मेजर श्री० पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद जी पाण्डेय

B. A., L. L. B., F. R. E. S., M. R. A. S.

Ex-chairman Municipal Board Bareilly

दीवान, ओरछा राज्य

पण्डित गौरीशङ्करजी द्विवेदी ने 'बुन्देल-वैभव' नामक संगृहीत ग्रन्थ को बहुत परिश्रम से निर्माण कर हिन्दी भाषा की और विशेषकर बुन्देलखण्ड की ऐसी चिरस्थायी सेवा की है जो सर्वथा सराहनीय है।

इस कवि-प्रसवा तथा वीर-प्रसवा बुन्देलखण्ड में बहुत से कवि, जिनकी कविताओं से एततदेशीय जनता तो परिचित थी पर अन्य प्रान्त के लोग विशेष रूप से परिचित न थे, अब द्विवेदीजी की इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-प्रेमियों के समक्ष आ जावेंगे। हिन्दी के अनन्य भक्त मेरे पूज्य मित्र रायबहादुर पण्डित श्यामबिहारीजी मिश्र इस पुस्तक के विषय में मुझसे पहिले लिख चुके हैं इस कारण 'सुत्रस्ये वास्ति मेगति' इस आधार पर मैंने यह थोड़े से शब्द द्विवेदीजी के अनुरोध से लिख डाले हैं।

मुझे पूर्ण आशा है कि यद्यपि यह ग्रन्थ अपने ढंग का प्रथम ही है पर आगे चलकर इसका और भी विस्तार होगा क्योंकि अभी बुन्देलखण्ड में हस्तलिखित बहुत सी पुस्तकें विद्यमान हैं और ग्राम्य-गीत और गाथाओं का भण्डार भी यहाँ पर बहुत है। विशेष हर्ष की बात यह है कि पण्डित गौरीशंकर

द्विवेदी 'श्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद्', जो कि हमारे प्रजा-वत्सल बिन्ध्येल कुलावतंस श्री सवाई महेन्द्र महाराजा वीरसिंह-देव बहादुर ओड़छाधिपति के हिन्दी प्रेम का जीवित उदाहरण है, के प्रधान-मन्त्री भी रह चुके हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि द्विवेदीजी इस महान् कार्य्य में सफलता प्राप्त करेंगे और अन्यान्य प्रकार से मातृभाषा की सेवा भविष्य में भी करते रहेंगे।

विनम्र—
विन्ध्येश्वरीप्रसाद पाण्डे।

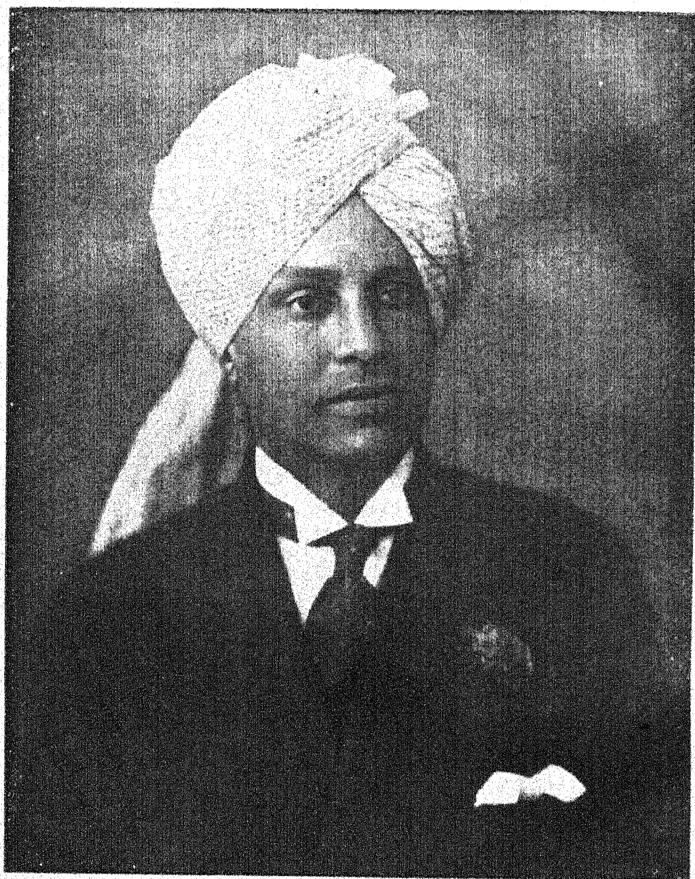
श्री० पं० अश्विनीकुमारजी पाण्डेय

बी० ए०

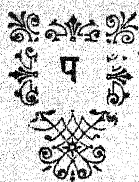
होम मिनिस्टर ओरछा राज्य

का

वक्तव्य



श्री० पं० अश्विनीकुमार जी पाण्डेय बी० ए०
M. R. A. S.
होम मिनिस्टर ओरछा राज्य



पण्डित गौरीशंकरजी द्विवेदी की कृपा से मुझे 'बुन्देल वैभव' में सन्निहित साहित्यिक सुकृति के पर्यवेक्षण का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसके निमित्त मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ।

यह ग्रन्थ कविता, इतिहास तथा भाषा-विज्ञान के सुन्दर सम्मिश्रण से ओतप्रोत है।

वर्तमान समय में हिन्दी भाषा जाग्रति की परिवर्तनशील अवस्था में है, अतएव प्रकृति-प्रदत्त साहित्यिक अन्वेषण की ओर स्वाभाविक अभिरुचि तथा विवेचनात्मक बुद्धि स्वरूप-वर प्राप्त द्विवेदीजी सरीखे विद्वान् ही, जो कि आधुनिक विचार प्रणाली से भिज्ञ हैं, ऐसी अवस्था में भावी जिज्ञासुओं को ज्ञान-ज्योति प्रदान कर सकते हैं; भाषा-भारती का भण्डार समुचित साहित्य से भर सकते हैं।

सब ही हिन्दी-प्रेमियों का लक्ष्य यथार्थ में तो यही है कि नागरी सब से कोमल मधुर भाषा तथा सब से उत्कृष्ट विचार प्रकट करने का साधन होने के कारण अपने राष्ट्रीय भाषा के पद को अक्षुण्ण बनाए रहे और यह तो मानना ही पड़ेगा कि भौगोलिक और जातीय विभागों से भाषा का विच्छेद नहीं किया जा सकता।

द्विवेदीजी द्वारा प्रस्तुत किया हुआ रोचक स्थायी साहित्य यह भली प्रकार सिद्ध करता है कि सुकवियों को उत्पन्न कर उन्हें आश्रय देने में बुन्देलखण्ड सर्वदा से अग्रगण्य रहा है और अपने इस गौरव के कारण भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों पर

शताब्दियों से उसका प्रभाव चला आ रहा है और आशा है कि ऐसा ही बना रहेगा।

भारतवर्ष में कदाचित ही कोई राजनीतिक विभाग ऐसा हो जहाँ पर कि भारत पर राज्य करने वाले किसी न किसी वंश के उत्थान और पतनकाल में, बुन्देलखण्ड की शूरवीर जातियों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अपनी शूरवीरता का परिचय न दिया हो और अपनी चिरस्मरणीय घटनाओं से इतिहास न बनाया हो।

यह खेद का विषय है कि इस महत्वपूर्ण गुरुतर कार्य्य में जिसको कि द्विवेदीजी कर रहे हैं, वह प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है जिसके कि वे सर्वथा अधिकारी हैं।

जिस महत्वपूर्ण महान ग्रन्थ की रचना का वे विचार कर रहे हैं, और जिसके लिए हमारी भी आन्तरिक अभिलाषा है कि परमात्मा करे वह शीघ्र ही प्रकाशित हो, वह राजकीय संरक्षण के बिना सम्भव नहीं।

हर्ष है कि हमारे हिन्दी प्रेमी वर्त्तमान ओरछा-नरेश इस ओर अपनी विशेष रुचि रखते हैं अतः उनके निश्चय, अध्यवसाय और सहायता के बलपर तथा द्विवेदीजी सरीखे कार्य्यकर्त्ताओं के सहयोग से आशा है कि शीघ्र ही इस सम्बन्ध में हम अपनी बहुत कुछ उन्नति कर लेंगे।

मेरी कामना है कि ग्रन्थकार को अपनी इस प्रशंसनीय योजना में पूर्ण सफलता प्राप्त हो।

शिवरात्रि सं० १९९० वि०
टीकमगढ़
सोमवार १२-२-१९३४

अश्विनीकुमार पाण्डेय

रायबहादुर डाक्टर बा० हीरालालजी

बी० ए०, डी० लिट्

रिटायर्ड डिपुटी कमिश्नर कटनी

President of the 6th session of All India oriental Conferences.

पूर्व अध्यक्ष काशी नागरी प्रचारिणी-सभा

बनारस

के

दो शब्द



राय बहादुर डाक्टर हीरालाल जी बी० ए० डी० लिट M. R. A.
रिटायर्ड डिपुटी कमिश्नर कटनी
President of the 6th Session of All India Oriental Conferen[ce]
पूर्व अध्यक्ष काशी नागरी प्रचारिणी सभा बनारस।



मुझसे इस पुस्तक पर दो शब्द लिख देने का आग्रह किया गया है, परन्तु जिस ग्रन्थ की भूमिका में रचयिता ने स्वयं उसका नख से शिख तक दर्शन करा दिया हो और जिसको रायबहादुर रावराजा श्यामबिहारी मिश्र के समान सुलेखक ने अपनी प्राक्कथन रूपी शानदार साड़ी पहना दी हो, उसके लिए इधर उधर के दो शब्दों की क्या आवश्यकता है ? बात समझ में नहीं आई, मैं क्षण भर असमंजस में पड़ गया, परन्तु ज्योंही स्मरण हुआ कि केशव-लीला-भूमि में यह बुन्देल-वैभव रूपी नायिका भूमि नायक बुन्देलावीर से परिणत होने वाली है त्योंही भ्रम निवारण होगया। ऐसे अवसरों में अक्षत डालने वाले चाहने पड़ते हैं। इस कार्य के लिए मैं सहर्ष उद्यत हूँ और हृदय से चाहता हूँ कि कार्य सफल व मंगलप्रद हो।

विन्ध्य पर्वत पर प्रसरित महाराज श्री विन्ध्यशक्तिकी क्रीड़ा भूमि विन्ध्येलखण्ड वर्तमान बुन्देलखण्ड जिस प्रकार भारत-भूमि का केन्द्र स्थल है उसी प्रकार वह भारतीय समस्त वैभव का केन्द्र रहा है। यह विन्ध्यशक्ति की सन्तति और सम्बन्धियों का ही प्रभाव है, कि जिससे हिन्दू धर्म आज तक फूलता फलता है। यदि उन्होंने अपना हाथ न डाला होता तो तुलसी की रामायण के

बदले हम को बुद्धायण पढ़ने को मिलती। यह बुन्देलखण्ड के कंकड़ों की महिमा है कि नरेन्द्रों के मस्तक नहीं श्रीकृष्ण भगवान् के माथे पर स्थान पाकर जगमगा रहे हैं। बुन्देलखण्ड का बच्चा बच्चा सगर्व गीत गाता है "पन्ना के जुगल किशोर मजा उड़ें तोरी कलगी में।" इस अवस्था में देश के महत्व से प्रेरित हो यदि सुकवि गौरीशंकर ने उसके कवियों की उक्ति रूपी रत्नों का संग्रह कर डाला, तो उचित ही था। इस कार्य का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया गया है और मेरी समझ में अत्यन्त प्रशंसनीय है।

ग्रन्थ के पढ़ने से आँखें खुल जाती हैं कि इसी एक अञ्चल में हिन्दी साहित्य का कितना बड़ा भण्डार भरा पड़ा है, जिसके शोध की कितनी बड़ी आवश्यकता है। बुन्देलखण्ड के नरेश प्राचीन काल से कविता रसिक और कवि-भक्त रहे हैं। वे कविता की सेवा में सर्वस्व अर्पण करने के लिए उद्यत रहते थे। छत्रसाल ने तो शिवाजी द्वारा सम्मानित भूषण कवि को उनसे अधिक सम्पत्ति प्रदान करने का सामर्थ्य न देख उस कवि शिरोमणि की पालकी कंधे पर रख अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया था, तो क्या उन्हीं के वंशज इस वृद्धिगत साहित्यिक काल में प्राचीन कवियों की उत्तम रचनाओं के उद्धार की चेष्टा न करेंगे ? जिस प्रकार प्राणनाथजी ने पत्थरों के रत्नों को प्राप्त करने का मार्ग बतला दिया था जिसके अनुकरण करने से अनेक देदीप्यमान हीरे हाथ लगे थे, उसी प्रकार पण्डित

गौरीशंकर के इंगित करने पर यदि यथोचित उद्योग किया जाय तो अनेक साहित्यिक हीरे मिलने की बड़ी सम्भावना है।

ग्रन्थकर्त्ता ने इस विषय पर जो अपील की है उसके सम्बन्ध में कदाचित यह सूचना अभीष्ट होगी कि संयुक्तप्रान्त की सरकार की सहायता द्वारा नागरी-प्रचारिणी सभा ने कोई ३५ साल से हिन्दी ग्रन्थान्वेषण का कार्य चला रक्खा है, जिसके फल स्वरूप इतनी उपलब्धि हुई है कि जिसका संक्षिप्त वर्णन करने में सहस्रों पृष्ठों की रिपोर्टें छप चुकीं और छपती जाती हैं। उसी शोध के आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनेक ग्रन्थ प्रस्तुत हो गये हैं। अभी यह काम यू० पी० के एक कोने ही में हुआ है, पूर्ण होने पर कदाचित् कई अशुद्धियों को सुधारना पड़ेगा, यथा भुवाल कवि विषयक भूल, जिसके कारण एक सत्रहवीं शताब्दी का कवि दसवीं शताब्दी में बैठा दिया गया है। यथार्थ में हिन्दी के प्रारम्भिक साहित्य के इतिहास में अभी तक गड़बड़ चली आती है, क्योंकि आदि में किसी ने जो कुछ लिख दिया उसी का अनुकरण पीछे के लेखक करते चले जाते हैं। बिहारप्रान्त की खोज से प्रकट होता है कि अब इस विषय में बहुत हेरफेर करना पड़ेगा। विद्या महोदधि श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन भागलपुर के एकादश सम्मेलन में जो सिद्धों की कविता के उदाहरण दिये थे, उनसे पता चलता है कि कोई कोई उनमें से ७५० ई० के हैं।

हिन्दी के इतिहासों में इनका कहीं पता ही नहीं चलता। यदि ये सम्मिलित भी कर लिये गये होते, तब भी हिन्दी के साहित्य का पूरा इतिहास लिखने का दावा नहीं किया जा सकता। वह अधूरा ही रहेगा जब तक प्रत्येक प्रान्त में यथोचित शोध न हो जाय। इस दृष्टि से भी मध्यभारत में खोज का काम तुरन्त आरम्भ करना अति आवश्यक है।

—हीरालाल।



'भारत भारती' 'साकेत' आदि अनेक ग्रंथों के

रचयिता

कविवर बाबू श्री० मैथिलीशरणजी गुप्त

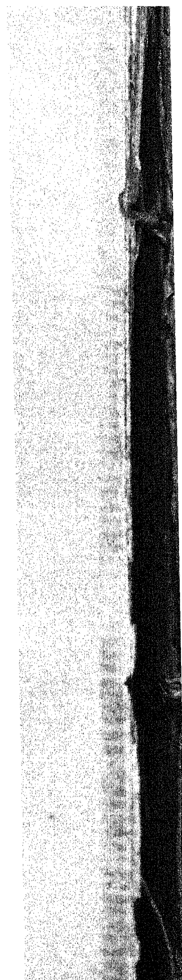
की

बुन्देल वैभव

पर

एक बात





श्रीयुत पण्डित गौरीशङ्करजी द्विवेदी के इस सत्प्रयत्न के लिए मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। हमारे कितने ही अज्ञात कवियों से उन्होंने हमारा परिचय कराया है; कितनी ही लुप्तप्राय कविताओं का उन्होंने उद्धार किया है। कौन कह सकता है कि इससे हमें कितना आनन्द न मिलेगा।

हमारा प्रान्त चाहे कितनी बातों में पिछड़ा हुआ क्यों न हो किन्तु कविता-प्रेम हमारा मानो प्रकृतिगत है। कविताओं की आलोचनाओं में मतभेद हो सकता है और यह भी सम्भव है कि कहीं हम अपनों का पक्षपात भी कर जायें परन्तु यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि द्विवेदीजी ने जो कठिन कार्य्य किया है उसके लिए साहित्यप्रेमी उनके कृतज्ञ रहेंगे और 'बुन्देल-वैभव' हिन्दी साहित्य की वैभव वृद्धि करेगा।

टीकमगढ़
२५-२-१९३४

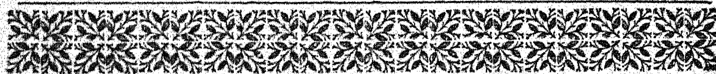
—मैथिलीशरण गुप्त।

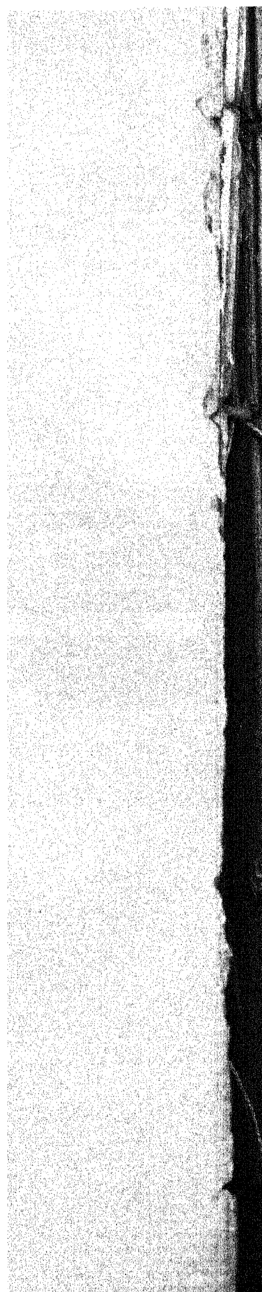






बुन्देल-वैभव–प्रथम भाग







सार में जीवित और उन्नत जातियों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने पूर्वापर इतिहास का भली प्रकार ज्ञान रक्खें। देश-काल की गति-विधि, उसके समय समय पर हुए परिवर्तनादि और अनेक आवश्यक बातें इतिहास ही से जानी जाती हैं। इतिहास साहित्य का एक मुख्य अङ्ग है; इतिहास और साहित्य की सृष्टि लेखकों और कवियों द्वारा ही हुआ करती है अतः यह आवश्यक है कि प्रथम हम अपने इन इतिहास-ग्रन्थों के निर्माताओं के सम्बन्ध में जानलें। प्रस्तुत ग्रन्थ इन ही भावनाओं से प्रेरित होकर लिखा गया है।

बुन्देलखण्ड वीरों और कवियों की खान है, इसमें कितने कैसे कैसे कवि हृदय महानुभाव उत्पन्न हुए हैं इस का वर्णन यथास्थान पर पाठकों को मिलेगा।

बुन्देलखण्ड के साङ्गोपाङ्ग इतिहास का अभाव मुझे अधिक समय से खटक रहा है और उसको हिन्दी संसार के समक्ष रखने की मेरी उत्कट इच्छा है एक प्रकार से उसका श्री गणेश इस 'बुन्देल-वैभव' ही से हो रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी कवियों के सम्बन्ध में लिखा जा रहा है अतः यह उचित जान पड़ता है कि प्रारम्भ में (१) हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास (२) हिन्दी कविता और उसके मुख्य अङ्ग और (३) कवि की महत्ता पर संक्षेप में लिख दिया जावे फिर बुन्देलखण्ड और अन्य आवश्यक विषयों पर भी यथास्थान भूमिका में प्रकाश डाला जायगा।

हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति
का
संक्षिप्त इतिहास

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति उस प्राचीन भाषा से मानी जाती है जिस भाषा को आदि काल में हमारे तथा यूरोप निवासियों के पूर्वज अपने व्यवहार में लाते थे। विद्वानों का मत है कि जहाँ एशिया और यूरोप की सीमा एक दूसरे से मिलती है दक्षिण रूस के उसी पहाड़ी प्रदेश में हमारे तथा यूरोप निवासियों के पूर्वज साथ साथ ही रहते थे और एक ही भाषा बोलते थे। कालान्तर में उस प्रदेश से यूरोप वालों के पूर्वज पश्चिम की ओर और हमारे पूर्वज पूर्व की ओर चल दिए और तब ही से भाषा के स्वरूप ने विभिन्न रूप धारण किए। पश्चिम की ओर जाने वालों की भाषाओं के भेदों में ग्रीक, लैटिन, केल्टिक और ट्यूटानिक आदि मुख्य हैं और पूर्व की ओर जाने वालों की भाषाओं के ईरानी, मीडिक और आर्य्य आदि भेद हैं।

संस्कृत और अवस्ता की भाषा का सादृश्य

भारतवर्ष में हमारे पूर्वज कन्धार और काबुल की ओर से पंजाब में आये, उन दिनों भी हमारी भाषा मीडिक भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। मीडिक भाषा बोलने वालों को असुर (अहुर) कहते थे और उनकी भाषा को आसुरी। वेदों तथा उस समय के अन्य संस्कृत साहित्य से यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि वेद और पारसियों के पूज्य ग्रन्थ अवस्ता की भाषा में बहुत कुछ सादृश्य है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द देखिए।

वैदिक शब्द	अवस्ता के शब्द
वायु	वयु
दानव	दानु
गाथा	गाथा
मंत्र	मन्थ्
आहुति	आजुइति

अब संस्कृत शब्दों और अवस्ता के शब्दों का भी सादृश्य देखिए:—

संस्कृत शब्द	अवस्ता के शब्द
पशु	पसु
दातरि	दातरि
मम	मम
त्वम्	त्वम्
अस्ति	अस्ति



जब हमारे पूर्वज धीरे धीरे आकर पंजाब में बसने लगे तो उनकी भाषा ने 'पुरानी संस्कृत' का रूप धारण कर लिया। कालान्तर में उसके काश्मीरी, कोहिस्तानी, लहँड़ा, सिंधी, मराठी, उड़िया, बिहारी, बङ्गला, आसामी, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी आदि आदि अनेक भेद हो गए। यह ईसवी सन् के पाँच-सात सौ वर्ष पहिले की बात है। इसी पुरानी संस्कृत ने धीरे धीरे एक ऐसी भाषा का रूप धारण किया जो कि प्रायः पूरे उत्तरी भारत में अशोक के समय में, जो कि ईसा के प्रायः २०० वर्ष पहिले हुए हैं, बोली जाती थी; और उसे 'प्राकृत' कहते थे।

पुरानी संस्कृत

जब पुरानी संस्कृत भाषा परिमार्जित करके साधारण बोलचाल की भाषा से लिखित भाषा के लिए व्यवहार की जाने लगी तो उसे 'संस्कृत' या संस्कार की हुई भाषा कहने लगे। वैदिक साहित्य के अधिकांश भाग में पुरानी संस्कृत, संस्कृत और प्राकृत भाषाएँ एक साथ व्यवहृत की हुई मिलती हैं।

संस्कृत

प्राकृत भाषा के मुख्य तीन भेद माने जा सकते हैं।

प्राकृत भाषा के मुख्य भेद और लक्षण

प्राकृत (१) वेदों की बहुत पुरानी संस्कृत भाषा।
प्राकृत (२) पाली भाषा।
प्राकृत (३) हिन्दी भाषा।

प्राकृत भाषा की प्रथमावस्था में प्रारम्भ काल में व्यंजनों से बने हुए कर्णकटु और संयोगी शब्दों की भरमार थी। दूसरी अवस्था में कर्णकटुता तो कम हो गई किन्तु संयोगात्मक रूप बना रहा और तीसरी अवस्था में स्वरों की प्रचुरता कम हो गई।

अशोक के समय के शिलालेखादि प्रायः प्राकृत नं० २ की भाषा में लिखे मिलते हैं। बौद्धों के धार्मिक ग्रन्थ भी इसी भाषा में लिखे गए थे। इसी भाषा से कालान्तर में मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री आदि भाषाएँ उत्पन्न हुईं।

मागधी भाषा बिहार में, शौरसेनी भाषा गङ्गा-यमुना के बीच में तथा उसके आस-पास और महाराष्ट्री भाषा बरार तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश में व्यवहार में आती थी।

अपभ्रंश भाषा

धीरे-धीरे प्राकृत भाषा का स्थान 'अपभ्रंश भाषा' यानी 'बिगड़ी हुई' भाषा ने लिया। और इसी अपभ्रंश भाषा से भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न रूप में बोली जाने वाली भाषाएँ उत्पन्न होगईं। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

नाम प्रान्त	भाषा जो पहिले बोली जाती थी	वर्तमान भाषा
सिन्ध नदी के अधोभाग के आस-पास का देश; (इसे कभी केकय देश भी कहते थे)	ब्राचड़ा	सिंधी और लहड़ा
नर्मदा नदी के पार्वत्य प्रान्तों में, अरब समुद्र से उड़ीसा तक	वैधर्भी अथवा दाक्षिणात्य	मराठी
नर्मदा नदी के पार्वत्य प्रान्तों के पूर्व से लेकर बंगाले की खाड़ी तक	ओडरी अथवा उत्कली	उड़िया



नाम प्रान्त	भाषा जो पहिले बोली जाती थी	वर्तमान भाषा
उज्जैन के आस-पास का प्रदेश	गौर्जरी	गुजराती
छोटा नागपुर, बिहार और संयुक्तप्रान्त का पूर्वी प्रदेश	मागधी	बिहारी
पूर्वी पंजाब से नेपाल तक भारतवर्ष के उत्त-रीय पहाड़ी प्रदेशों में	आवन्ती	पहाड़ी
मालदा ज़िला (प्राचीन गौड़ देश भी उस ही को कहते थे)	प्राच्य	बङ्गला
ढाका, सिलहट, कछार मैमनसिंह	प्राच्य ढक्की	बङ्गला
आसाम और आस-पास का प्रान्त	प्राच्य गौड़ अपभ्रंश	आसामी
अवध, बघेलखण्ड, और छत्तीसगढ़	अर्द्ध मागधी	वर्तमान पूर्वी हिन्दी

नाम प्रान्त	भाषा जो पहिले बोली जाती थी	वर्तमान भाषा
पंजाब प्रदेश तथा मथुरा आगरा आदि ब्रज कहलाने वाले प्रान्त	शौरसेनी	पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी तथा ब्रजभाषा
यमुना और नर्मदा तथा चम्बल और टौंस से घिरा हुआ प्रदेश बुन्देलखण्ड	शौरसेनी अर्द्धमागधी	बुन्देलखण्डी भाषा

कितने ही शब्द बिना रूपान्तर के संस्कृत और प्राकृत भाषा से हिन्दी में आगए हैं और कुछ शब्दों में थोड़ा ही सा रूपान्तर हुआ है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित शब्दों को देखिए:—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
कर्म्म	कम्म	कर्म्म, काम
मूर्खः	मुरुखो	मूरुख, मूरख
ध्वनिः	धुनी	धुनि
छाया	छाहा, छाआ	छाया, छांह
पुत्र	पुत्त, पूत	पूत
भाषा	भासा	भासा
कर्ण	कन्न, कान	कान
कतमः	कइमो, कइमा, कैमा	कैवां, कौनवाँ
सर्वाः, सर्वो	सव्वो, सव्वे	सब
कुमारः	कुमर	कुमर, कुँवर

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
त्वम्	तुमं, तुवं	तू, तुम
कः, के	को, के	को, के, कौन
कदली	कयली, केलं, केली, कवलं	केला
काष्ठ	कट्ठ	काठ
नूपुर	नूउर, नेउर	नेउर
अर्द्धः	अर्द्ध, अद्धा	आधा
आगतः	आअआ, आआ	आया
आत्मीयन्	अप्पणं	अपना
आशीः	आसीसा	आसीस
एकः	एगो, एक, इक्क	एक, इक्क
द्वि	दुए, दो	दो
त्रि	तिणि, ति	तीन
चतुर	चत्तारि, चउरो	चार, चौ
पंच	पण, पंच	पंच, पाँच
सप्त	सत्त	सात, सत्त

—इत्यादि।

संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में मनुष्यमात्र की भाषाओं में सादृश्य था पश्चात् देश, काल आदि के परिवर्तन और प्रभाव से उस में भेद हो गया और उसने भिन्न भिन्न रूप धारण कर लिए, करती जा रही है और करती जायगी।

हमारे पूर्वजों की आदि भाषा पुरानी संस्कृत है उससे कई प्रकार की प्राकृत भाषाएं उत्पन्न हो गईं। इसी प्राकृत भाषा की किसी शाखा का परिमार्जित रूप संस्कृत भाषा ने धारण किया। प्राकृत भाषाओं ही से अपभ्रंश भाषाएं बनीं और जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं से भारतवर्ष की प्राय: १५० भाषाएं बन गईं। शौरसेनी और अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश भाषा ही से हमारी भाषा उत्पन्न हुई है और उस ही को हम आजकल हिन्दी भाषा कहते हैं; हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का यही संक्षिप्त इतिहास है।

उपरिलिखित बातों से हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का तो पता चल गया अब हिन्दीभाषा के मुख्य मुख्य अङ्गों पर भी लिख देना उचित जान पड़ता है। सृष्टि के प्रारम्भ ही से मनोगत भावों को व्यक्त करने के लिए मनुष्य जाति को भाषा का निर्माण करना पड़ा था। यदि ऐसा न किया जाता तो केवल इंगित और संकेतों के आधार पर एक दूसरे के भाव जानना कठिन ही नहीं असम्भव ही सा हो जाता। प्रथम वस्तुओं के नाम रक्खे गए जैसे दो पैर, दो हाथ और नाक कान आँखों वाले प्राणियों को मनुष्य, चार पैर, दो सींग और पूँछ वाले प्राणियों को गाय, बैल, भैंस, भैंसा, और सिंह आदि को पशु तथा दो पैर और पंख वाले प्राणियों को पक्षी कहने लगे। इतना कर देने से परस्पर के भाव तो कथित भाषा से व्यक्त होने लगे किन्तु विचारों को एकत्रित कर उनके संग्रह का भी कोई उपाय होना चाहिए था तब उन्होंने एक एक ध्वनि का एक एक संकेत नाम रख लिया और उसे वर्णमाला के नाम से पुकारने लगे।

वर्णमाला

इस प्रकार भाषा के दो भाग हो गए। कथित



भाषा और लिखित भाषा। भाषा का मूल आधार शब्द है, कानों से जो ध्वनि सुनाई देती है उसे हम शब्द कहते हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं एक अव्यक्त और दूसरी व्यक्त।

भाषा

हाथों से ताली बजाने में जो ध्वनि निकलती है उससे हम ताली बजाने की ध्वनि का बोध कर लेते हैं। इसी प्रकार पशु-पक्षियों के मुँह से निकली हुई ध्वनि को हम रंभाना और चहचहाना समझ लेते हैं। यद्यपि इस प्रकारकी ध्वनियों से हमें यह पता अवश्य चल जाता है कि किसी ने हाथों से ताली बजाई है, गाय रंभा रही है या मोर बोल रही है किन्तु गाय और मोर क्या बोल रही है यह हम नहीं जान सकते। अतः इस प्रकार की ध्वनियों को हम अव्यक्त भाषा कहते हैं और जिस ध्वनि के सुनने से हमें तत्काल पदार्थ विशेष का ठीक ठीक बोध हो जाता है उसे हम व्यक्त भाषा कहते हैं जैसे 'जल' 'अग्नि' 'रथ' आदि शब्दों से तत्काल ही हमें वस्तु विशेष का बोध हो जाता है।

शब्द

शब्द दो प्रकार के होते हैं सार्थक और निरर्थक। भाषा सार्थक शब्दों ही से बनती है। हिन्दी भाषा में व्यवहृत होने वाले शब्दों को प्रायः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

तत्सम, तद्भव और अन्य भाषाओं से आए हुए शब्द।

तत्सम

तत्सम वे शब्द कहलाते हैं जो संस्कृत भाषा से आए हैं और हिन्दी भाषा में भी उनका उसी रूप में व्यवहार होता है। जैसे:—जल, फल, विद्या,

आचार, विचार, आहार, विहार, आज्ञा, सत्य, धर्म, क्षेत्र, ज्ञान, नाम, कर्म इत्यादि।

तद्भव

तद्भव वे शब्द कहलाते हैं जो संस्कृत के शब्दों से बने तो अवश्य हैं किन्तु अपभ्रंश रूप में हिन्दी भाषा के व्यवहार में आते हैं जैसे:—

हिन्दी	संस्कृत
धुनि	ध्वनि
अजान	अज्ञान
तो	ततः
नहीं	नहि
और	अपरः

अन्य भाषा के शब्द

समय समय पर संसर्ग के कारण अन्य भाषाओं के भी शब्द हिन्दी भाषा में बोले और लिखे जाने लगे थे और अब वे इतने घिस-पिस कर मिल गए हैं कि उन्हें दूर नहीं किया जा सकता। जैसे स्टेशन शब्द अंग्रेजी भाषा का है यदि स्टेशन के स्थान में "अग्निरथ स्थापन स्थल" और रेल के स्थान में 'अग्निरथ' कहें तो ठीक न होगा वे कुछ शब्द इस प्रकार हैं:—

अंग्रेजी से—कोट, रेल, स्टेशन, मोटर लारी, डाक्टर, स्टेशन मास्टर, लालटेन इत्यादि।

फ़ारसी से—इश्तिहार, दरोग़ा, पोशाक, नालिश, क़लम।

अरबी से—मदरसा, नायब, वकील, मुख्तार, हज़रत।

शब्दों की अर्थ-शक्ति के प्रायः तीन भाग कहे गये हैं। पर्य्याय शब्द से, व्युत्पत्ति से तथा लाक्षणिक अर्थ से।



पर्य्यायवाची

किसी शब्द के समान अर्थ रखने वाला दूसरा शब्द पर्य्याय-वाची शब्द कहलाता है जैसे:—

सरोज	का	पर्य्यायवाची	कमल
बिड़ौजा	"	"	इन्द्र
दिवाकर	"	"	सूर्य
दिनेश	"	"	सूर्य
नख	"	"	नाखून
नयन	"	"	आँख

व्युत्पत्ति से

धातु के साथ प्रत्यय के योग में, वा रूढ़ि रूप में धातु के अर्थ में अथवा समासों में आए हुए शब्दों से जो अर्थ विशेष निकलता है उसे व्युत्पत्ति द्वारा हुआ अर्थ कहते हैं।

जैसे:—आशुतोष = आशु + तोष = महादेवजी
गणेश = गण + ईश = गणपतिजी
गिरीश = गिरि + ईश = शङ्करजी
पङ्कज = पङ्क + ज = कमल
पञ्च वक्र = पंच + वक्र = शिव

लाक्षणिक

जिस शब्द के लक्षण विशेष से उसका अर्थ निकाला जा सके उसे लाक्षणिक कहते हैं।

जैसे:—प्रभंजन = वायु, पवन, टूटना, विदारण
प्ररोह = निकलना, चढ़ना, अङ्कुर
तक्षक = पाताल का बड़ा सांप, विश्वकर्मा, सूत्रधार, लकड़ी काटने वाला।

भगत = सेवक, भक्ति करने वाला, नाचने गाने वाला।
नाथ = स्वामी, मालिक, रस्सी जो बैल की नाक में डाली जाती है।

शब्दों के प्रयोग करने तथा उनके विषय की विशेष बातें जानने के लिए उस विषय के ग्रन्थों को देखना चाहिए। शब्दों का अर्थ वैषम्य, एकार्थशब्द और अर्थ भिन्नता आदि का विस्तृत विवरण उन ग्रन्थों में मिल जायगा।

वाक्य

विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर जब सार्थक शब्द समूह किसी एक पूरी बात को व्यक्त करने लगते हैं तो उसे 'वाक्य' कहते हैं। वाक्य के अंतर्गत पदों के सम्बन्ध को (१) आकांक्षा
(२) योग्यता
और (३) आसक्ति कहते हैं।

आकांक्षा—वाक्य का अर्थ समझने के लिए एक पद सुनकर दूसरे पद के सुनने की इच्छा होती है उसे आकांक्षा कहते हैं।

'पुस्तक की' सुनने के पश्चात् कुछ और सुनने की इच्छा होती है; और जब यह कह दिया जाता है कि 'छपाई अच्छी है' तो आकांक्षा पूरी हो जाती है।

योग्यता—वाक्य के पदों का अन्वय करने में अर्थ सम्बन्धी गड़बड़ी न पड़े। जैसे:—

'वह आँखों से सुनता और कानों से देखता है' यह पद-विन्यास योग्यता पूर्वक नहीं हुआ। आँखों से सुना और कानों से

देखा नहीं जाता अतः 'वह आँखों से देखता और कानों से सुनता है' ऐसा वाक्य ठीक होगा।

आसक्ति—आकांक्षा और योग्यता युक्त पदों को व्यवस्थित रूप में व्यवहृत करने को आसक्ति कहते हैं। जैसे:—

'बुन्देलखण्ड' बोलने या लिखने के पश्चात् 'वीरों और कवियों की भूमि है' बोलना या लिखना पड़ेगा।

इसी प्रकार 'बुन्देलखण्ड का दृश्य अच्छा है प्राकृतिक' न होकर 'बुन्देल खण्ड का प्राकृतिक दृश्य अच्छा है' ऐसा वाक्य ठीक होगा।

अतएव प्रत्येक शुद्ध वाक्य के लिए यह आवश्यक है कि उसके उपरिलिखित अङ्ग ठीक हों तभी वह वाक्य माना जा सकता है।

वाक्यांश

जिस वाक्य से पूरा पूरा तात्पर्य न जाना जा सके किन्तु मन के भाव कुछ अंशों में प्रकट हों उसे वाक्यांश कहते हैं जैसे:—'वृक्ष के पत्ते' 'रेल की सवारी' आदि।

प्रत्येक वाक्य के उद्देश्य और विधेय दो भाग माने गए हैं।

उद्देश्य

जिसके विषय में वाक्य में कहा जाता है उसे उद्देश्य कहते हैं।

विधेय

वाक्य में उद्देश्य के लिए जो कुछ कहा जाता है उसे विधेय कहते हैं।

'आचार्य केशव महाकवि थे' इस वाक्य में 'आचार्य केशव' उद्देश्य और 'महाकवि थे' विधेय है।

'बुन्देलखण्ड वीर और कवि प्रसविनी भूमि है' इसमें 'बुन्देलखण्ड' उद्देश्य और 'वीर और कवि प्रसविनी भूमि है' विधेय है।

वाक्यों को तीन भागों में साधारणतः विभक्त करते हैं:—

वाक्य-भेद (१) सरल (२) जटिल और (३) यौगिक।

सरल—जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय हो उसे सरल वाक्य कहते हैं। जैसे:—'बालक हँसता है' इसमें 'बालक' उद्देश्य (कर्त्ता) है और 'हँसता है' विधेय है।

जटिल—जहाँ एक वाक्य प्रधान रूप में हो और एक या कई और वाक्य सहायक रूप में हों वहाँ उसे जटिल वाक्य कहते हैं।

जिस प्रधान वाक्य के सहायक अन्य वाक्य लिखे जाते हैं वे या तो प्रधान वाक्य के साथ संज्ञा रूप में लिखे जाते हैं या विशेषण रूप में। जैसे:—

तुलसी और केशव वे कवि हैं, जिन पर भारतवर्ष और हिन्दू जाति को अभिमान है।

यौगिक—वह वाक्य है जिसमें दो या अधिक प्रधान उपवाक्य हों और उनमें से प्रत्येक के अथवा किसी एक के अधीन उपवाक्य भी हो। जैसे:—

'संसार में यदि जीवित जातियों में स्थान पाना है तो अपने पूर्वजों की जन्म जयन्तियाँ मनाओ, और तब स्वयं ही तुम्हें अपने अतीत का ज्ञान हो जायगा, भविष्य उज्ज्वल बन जायगा।'

वाक्य रचना

वाक्यों के समूह ही से भाषा बनती है और भाषा के दोनों प्रकार के भेदों में अर्थात् पद्यात्मक और गद्यात्मक भाषा में वाक्यों ही का साम्राज्य रहता है।

गद्य

जिस वाक्य में कारक और क्रिया आदि का नियमपूर्वक क्रम मिलता जावे उसे गद्य कहते हैं और छन्दोबद्ध वाक्य को पद्य कहते हैं। पद्य के विषय में 'हिन्दी कविता और उसके मुख्य अङ्ग' शीर्षक देकर आगे विशेष रूप से लिखा जा रहा है।

गद्य साधारणतः दो प्रकार की भाषाओं में लिखा जाता है (१) अलंकृत और (२) साधारण।

(१) अलंकृत भाषा में, उपमाओं, रूपकों, उत्प्रेक्षाओं और अलङ्कारों का विधिपूर्वक प्रयोग किया जाता है। और

(२) साधारण भाषा में—सरल बोलचाल के वाक्य प्रचुरता से व्यवहृत किये जाते हैं जिससे वह पढ़ते और सुनते ही समझ में आ जाती है।

इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए भाषा-व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ देखना चाहिए। अस्तु

साहित्य की परिभाषा

इन्हीं गद्यात्मक और पद्यात्मक ग्रन्थों के भण्डार को साहित्य कहते हैं। वैसे संस्कृत भाषा में तो 'साहित्य' शब्द केवल काव्य ग्रन्थों ही के लिए व्यवहृत किया जाता है किन्तु हिन्दी भाषा में यह शब्द 'लिटरेचर' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हो चला है और यह है भी ठीक। जब हम काव्य के दो भेद गद्य काव्य और पद्य काव्य मानते हैं तो केवल

पद्यात्मक ग्रन्थों ही को हम साहित्यिक ग्रन्थ मानें और गद्य काव्य के ग्रन्थों को साहित्यिक ग्रन्थों की श्रेणी में न रक्खें यह उचित प्रतीत नहीं होता है। साहित्यकारों ने रसात्मक वाक्य ही को काव्य माना है और सूक्ष्मता से विचार करने पर भी यही निष्कर्ष निकलता है कि—

जिस पद्य या वाक्य में हृदय हिला देने वाली उन्मादनी शक्ति प्रवाहित हो रही हो, जिसको पढ़कर या सुनकर हृदय अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगे या जिस वाक्य में कोई विशेष चमत्कार हो वही सच्ची कविता है फिर चाहे वह गद्य में हो या पद्य में। अतः सारांश यही है कि—

"किसी भाषा के गद्यात्मक और पद्यात्मक ग्रन्थों ही को हम साहित्य कहते हैं"।

मानव-जीवन के लिए साहित्य की आवश्यकता

संसार में जिस प्रकार प्राणिमात्र के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हवा, पानी और अन्न अनिवार्य्य है उसी प्रकार ही मस्तिष्क को संयत रखने के लिए साहित्य की बड़ी ही आवश्यकता है। साहित्य ही शिक्षित समुदाय का जीवन-प्राण है। साहित्य के अभाव में जीवन निरानन्द और पशुवत प्रतीत होने लगता है। किसी भी समय की पूर्वापर परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमको यह आवश्यक होता है कि हम उसके तत्कालीन साहित्य की ओर दृष्टिपात करें। साहित्यिक ग्रन्थ ही, हमें उस समय के देश-काल की वास्तविक परिस्थिति, उसके समय समय के परिवर्तन, ऐतिहासिक घटनाएँ, मानव-समाज का अंतरंग और बहिरंग वातावरण, आचार-विचार, रीति

रिवाज आदि का विवरण देते हैं। उदाहरणार्थ ओरछा राज्य ही के साहित्यिकों को ले लीजिए :—

कविवर पं० काशीनाथजी मिश्र के 'शीघ्रबोध' नामक ग्रन्थ के "अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी" आदि श्लोकों से उस समय के इस भाव की पूर्णतया: झलक मिलती है कि उन दिनों अनेक कारणों से ऐसा समय उपस्थित हो गया था जिससे हिन्दू-समाज को अपनी कन्याओं का उपयुक्त अवस्था ही में विवाह कर देना समयोचित और श्रेयष्कर समझा जाता था।

कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र के प्राय: सब ही ग्रन्थों से तत्कालीन विचार-प्रवाह और ऐतिहासिक तथ्य का मर्म मिलता है। और रतन बावनी, वीरसिंहदेव चरित्र तथा जहाँगीरचन्द्रिका तो इसी अभिप्राय से लिखे ही गए थे; इत्यादि। ऐसे और भी कितने ही उदाहरण लिखे जा सकते हैं किन्तु उनकी यहाँ अधिक आवश्यकता नहीं है।

विद्वानों का मत है कि :—

"कीर्तिर्यस्य स जीवति" संसार में जिसका यश, जिस की कीर्ति विद्यमान है वही जीवित है। यश और कीर्ति प्राप्त करने के लिए जीवन में सब ही कोई अनेक प्रकार के उद्योग करते हैं और ऐसा प्रयत्न करते हैं कि संसार में उनके जीवन के पश्चात् भी उनकी कीर्ति अवशेष रहे। किन्तु साहित्य सेवा के अतिरिक्त और भी कोई ऐसा कार्य्य है जिससे इतनी सुलभता से सदैव के लिए कीर्ति चिरस्थायी हो सके, इसमें सन्देह है।

वास्तव में संसार में कीर्ति स्थिर रखने वाली और सच्चा अमरत्व देने वाली "महाकवियों और साहित्यकारों की हृदय-

तंत्री से झंकृत मधुर काव्यमय स्वरावलि और उनकी लेखनी से लिखित अमर कृतियाँ ही हैं"।

ज्यों ज्यों जाति और देश उन्नत होता जाता है त्यों त्यों उन प्राचीन कृतियों का मूल्य और महत्व और भी बढ़ता जाता है। और सच तो यह है कि साहित्यिक परिज्ञान ही से मनुष्य यथार्थ में मनुष्य कहलाने योग्य होता है। इन्हीं भावों को देखिए कविवर भर्तृहरिजी कितनी मार्मिकता से व्यक्त करते हैं :—

साहित्य सङ्गीत कला विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान्
स्तद्भाग धेयं परमं पशूनाम् ॥

इस सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि साहित्यिक उन्नति ही के ऊपर, प्रत्येक जाति, देश तथा मानव-समाज की उन्नति, अवलम्बित है।

हिन्दी-कविता और उसके मुख्य अङ्ग

मनुष्य जीवन का मुख्य ध्येय आनन्द प्राप्त करना है। प्रारम्भ काल ही से आनन्द प्राप्त करने के अनेक उपाय हमारे पूर्वजों ने निर्माण किए हैं उन ही ने ललित कलाओं को जन्म दिया है। काव्य ललित कला ही का एक मुख्य अङ्ग है। काव्य से कवि को तो आनन्द मिलता ही है किन्तु साथ ही साथ संसार के कितने ही प्राणियों को वह आनन्द देने में समर्थ होता है इसी से ललित कलाओं में इसे सर्वोच्च स्थान मिला है।

काव्य

कविता का सम्बन्ध हृदय और मस्तिष्क दोनों ही से है। कवि जितना ही अधिक प्रकृति-सौन्दर्य, मानवजीवन की अन्त-स्तल भावनाएँ और सामयिक विचार-प्रवाह को अध्ययन कर मनोरंजक भाषा में व्यक्त करने में समर्थ होता है उतना ही

वह सफल और आनन्द देने वाला माना जाता है। इसीलिए विद्वानों ने 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' रस से पूर्ण वाक्य को काव्य माना है।

कविता की भाषा

काव्य का कलेवर भाषा ही हुआ करती है। कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए यह एक विचारणीय विषय है। वैसे तो 'भाव अनूठो चाहिए भाषा कोई होय' वाली उक्ति के अनुसार भाषा की बड़ी ही स्वच्छन्दता कवियों को दी गई है किन्तु प्रायः देखा यही गया है कि साधारण बोल-चाल की भाषा से कविता की भाषा कुछ पृथक् ही हुआ करती है। कविताओं का अध्ययन करने वाले व्यक्तियों से यह छिपा नहीं है कि ब्रजभाषा की कविताओं में जो शब्द व्यवहृत किए गए हैं वे उसी रूप में ब्रजभाषा में बोले नहीं जाते थे; और यही दशा खड़ी बोली और बोलचाल की भाषा में लिखी गई कविताओं की है। निष्कर्ष यही निकलता है कि कविता की भाषा साधारण भाषा से पृथक् ही होती है। हिन्दी साहित्य द्रुतिगति से उन्नत होता जा रहा है और यह सन्तोष की बात है कि व्याकरण संयत एवं शुद्ध सरल भाषा में कविता लिखना हमारे कविगण अधिक पसन्द करने लगे हैं, खिचड़ी भाषा या शब्दों को तोड़-मरोड़ कर लिखने की प्रथा अब धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

काव्यांग

कविता के मुख्य अङ्ग भाषा, अलङ्कार, रस, भाव और अर्थ-गौरव हैं। जब भाषा को हम कविता का कलेवर मानते हैं तो अलङ्कार को उसे सुसज्जित करने वाला आभूषण, रस को कविता का प्राण, भावको हृदय और अर्थ-गौरव को उसका विशाल मस्तिष्क मानना ही

पड़ता है। इस सम्बन्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन तो केवल इसी विषय के ग्रन्थों में मिल सकता है किन्तु संक्षेप में इनके सम्बन्ध में यहाँ लिख देना भी अनुपयुक्त न होगा।

अलङ्कार

जिस प्रकार आभूषण किसी सुन्दरी के स्वाभाविक सौंदर्य को बढ़ा देते हैं उसी प्रकार ही कविता-कामिनि के भाव रूपी सौन्दर्य को अलङ्कार बढ़ा दिया करते हैं। विद्वानों ने अलङ्कार की यह परिभाषा मानी है 'काव्योचित भाषा में शब्द और अर्थ सम्बन्धी जिससे कोई विशेष चमत्कार उत्पन्न हो उसे अलङ्कार कहते हैं।' अलङ्कार तीन प्रकार के होते हैं।

शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उभयालङ्कार।

शब्दालङ्कार

जिस कविता में शब्द सम्बन्धी चमत्कार हो उसे शब्दालङ्कार कहते हैं। उन शब्दों के पर्यायवाची शब्द रख देने से यद्यपि भाव तो वही व्यक्त हो किन्तु वह चमत्कार न रहे अत: इस प्रकार के अलङ्कार से अलंकृत कविता शब्दालङ्कार की कविता कहलाती है।

अर्थालङ्कार

जिस पद-योजना में अर्थ सम्बन्धी चमत्कार हो उसे अर्थालङ्कार कहते हैं।

उभयालङ्कार

जिस कविता में सम्पूर्ण अलङ्कारों में से कोई दो या अधिक अलङ्कार मिले हों उसे उभयालङ्कार कहते हैं।

शब्दालङ्कार के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक, लाटानुप्रास, श्लेष, वक्रोक्ति और पुनरुक्त बदाभास तथा अर्थालङ्कार के अन्तर्गत उपमा, मालोपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय,

प्रतीप, अभेद रूपक, ताद्रूपरूपक, परिणाम, उल्लेख, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, स्मरण, भ्रम, सन्देह, अपन्हुति, दीपक, कारक-दीपक, आवृत्ति दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, व्यतिरेक, परिकर, परिकरांकुर, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा, पर्य्यायोक्त, आक्षेप, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असंभव, असंगति, विषम, सम, विचित्र, प्रहर्षन, विषादन, अधिक, अन्योन्य, कारणमाला, आदि एक सौ से अधिक और उभयालङ्कार के अन्तर्गत संसृष्टि और संकर आदि हैं। संकर के भी फिर चार भेद हैं, अङ्गाङ्गिभाव, सम-प्राधान्य, सन्देह और एक वाचकानुप्रवेश।

रस

कविता का प्राण 'रस' को माना गया है। विद्वानों ने तो यहाँ तक लिखा है कि:—"ब्रह्मैव रसः रसो वै सः" ब्रह्म ही रस है वही रस है।

सुनि कवित्त को चित्त मधि, सुधि न रहै कछु और;
होय मगन वहि मोद में, सो 'रस' कहि शिरमौर।

रस दो प्रकार का माना गया है अर्थात् लौकिक और अलौकिक। अलौकिक रस के स्वाप्निक, मनोरथ और औपनायक यह तीन भेद हैं और लौकिक रस के मुख्यतः नव भेद हैं। अर्थात् शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

कुछ कुछ कवियों ने भक्ति और वात्सल्य रस भी इन नव रसों के अतिरिक्त माने हैं किन्तु अधिकांश आचार्यों ने इन्हें शृङ्गार रस के अन्तर्गत माना है। इन रसों के और भी उपभेद हैं

जैसे:—संयोग, वियोग, पूर्वानुराग, मान, प्रवास, करुणात्मक, अभिलाष, चिन्ता, सुमिरन, गुन-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण आदि।

भाव

'भाव' को विद्वानों ने कविता का हृदय माना है। मनुष्य के हृदय में प्रायः भावनाओं का ज्वार-भाटा आया करता है। भावना-शक्ति को मनोविज्ञान के आचार्यों ने मस्तिष्क की एक प्रमुख शक्ति माना है और इस ही से मनोविकार उठते तथा रस उत्पन्न होते हैं।

स्थायी

भाव दो प्रकार के होते हैं स्थायी और व्यभिचारी। हृदय का वह भाव, जो किसी बात के सुनने-देखने आदि से स्वभावतः ही उत्पन्न होकर स्थायी रूप से कुछ समय तक स्थिर रहता है स्थायी भाव कहलाता है।

रस अनुकूल विचार जो उर उपजत है आय,
थाई भाव बखानहीं, तिनही को कविराय।
है सब भावन में सिरें, टरत न कोटि उपाय,
है परिपूरण होत रस, तेई थाई भाव।

व्यभिचारी भाव

स्थायी भावों का अङ्कुर मनुष्य चित्त में हर समय उपस्थित रहता है किन्तु संचारी भावों का उदय और अस्त नदी की तरंगों की भाँति हुआ करता है।

भावों के विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, हाव, आदि और मुख्य भेद हैं एवं उद्दीपन, आलम्बन, विभाव के दो भेद हैं। उद्दीपन में नायक नायिका का वर्णन होता है और उद्दीपन में आभूषण, चंदन, षटऋतु, वन, नदी, पहाड़ आदि का वर्णन होता है। अनुभाव में विभावों के उत्पन्न होने पर जिन भावों की

उत्पत्ति होती है उन्हें अनुभाव कहते हैं। सात्विक भावों की गिनती अनुभावों ही में की जाती है :—

सुख दुख आदिक भावना हृदै माँहि जो होय,
सो बिनु वस्तु न परगटै सात्विक कहिये सोय।

सात्विक भाव के आठ उपभेद हैं। स्वेद, स्तंभ, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवरण, आँसू और प्रलय। इन आठों भावों का एक दोहा में इस प्रकार वर्णन है :—

पिय तकि जकि[२] अधवरण[४] कहि पुलिक[३] स्वेद[१] ते छाय;
है विवरण[६] कंपति[५] गिरै[८] तिय अँसुआ[७] ठहिराय।

निर्वेदादि ३३ भाव मन संचारी हैं जैसे :—

निर्वेद, ग्लानि, दीनता, शंका, त्रास, आवेग, गर्व, असूया, कोप, उग्रता, उत्सुकता, स्मृति, चिंता, तर्क, मति, प्रीति, हर्ष, ब्रीड़ा, अवहित्य, चपलता, श्रम, निद्रा, स्वप्न, आलस्य, वैपथ, मद, मोह, उन्माद, अपस्मार, जड़ता, विषाद, व्याधि और मरण।

हाव का लक्षण इस प्रकार है :—

होहिं सँजोग सिंगार में, दंपति के तन आय;
चेष्टा जे बहु भाँति की, ते कहिये दस हाय।

इत्यादि। इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए नायक नायिका* भेद सम्बन्धी ग्रंथ देखना चाहिए।

---

* स्व० पं० राधालाल जी गोस्वामी दतिया ने अपने 'राधाभूषण' नामक वृहद् ग्रंथ में इसका बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है। अभी इस ग्रंथ का केवल कुछ अंश ही 'आनन्द प्रेस' झाँसी से प्रकाशित हो रहा है। —लेखक



शब्दों में तीन प्रकार की शक्तियाँ मानी गई हैं; उन्हीं शक्तियों के द्वारा पद या वाक्य आदि का अर्थ जाना जाता है। इनके नाम हैं (१) अभिधा (२) लक्षणा (३) व्यञ्जना।

अर्थ शक्ति

जिस शक्ति से शब्दों का मुख्य या वास्तविक अर्थ जाना जाता है उसे अभिधा कहते हैं। अभिधा द्वारा जिस अर्थ का ज्ञान हो उसे वाच्यार्थ कहते हैं।

अभिधा

जिस के प्रभाव से शब्द के प्रधान या मुख्य अर्थ को छोड़ कर कोई निकट सम्बन्ध रखने वाला, प्रयोजन की रूढ़ि के कारण दूसरा अर्थ लिया जाय उसे लक्षणा कहते हैं।

लक्षणा

वाच्यार्थ वा लक्ष्यार्थ को छोड़ कर जिसके द्वारा एक और अर्थ जाना जाय उसे व्यंजना कहते हैं। व्यंजना द्वारा जो अर्थ घटित होता है उसे व्यंजनार्थ कहते हैं।

व्यंजना

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना से पदार्थ-निर्णय का बोध किया जाता है। पदार्थ-निर्णय और उपरिलिखित बातों के अतिरिक्त कविता की रीतियों, छंदों के भेद और उन के नियमों का भी संक्षेप में वर्णन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि प्रस्तुक ग्रंथ में कवियों और कविता ही का वर्णन किया गया है। यद्यपि 'छंद प्रभाकर' आदि अनेक ग्रंथों में इस सम्बन्ध का विस्तृत वर्णन है किन्तु रीति-प्रणाली आदि का दिग्दर्शन-मात्र कर देना यहाँ अनुपयुक्त न होगा।

सब विद्याओं के मूल वेद हैं। महर्षियों ने वेद के छः अङ्ग कहे हैं जैसे:—छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त शिक्षा और व्याकरण।

पिंगल

अतः छन्द-शास्त्र भी वेद का एक मुख्य अङ्ग है। छन्दशास्त्र यह सब से पहिले पिङ्गल महर्षि ने ग्रंथ लिखा था और वह यहाँ तक लोकप्रिय हो गया था कि छन्दशास्त्र का दूसरा नाम पिङ्गल हो गया था; और यही कारण है कि अब भी कवि समुदाय उन्हें सश्रद्धा स्मरण करता है।

छन्द की परिभाषा

मात्रा, वर्ण की रचना, विराम, गति का नियम और चरणान्त में समता जिस कविता में पाई जाती है उसे 'छन्द' कहते हैं।

छन्दों के भेद

महर्षियों ने छन्दों के दो भेद माने हैं। प्रथम वैदिक और दूसरा लौकिक।

वैदिक छन्द केवल वेदादि ही में व्यवहृत होते हैं किन्तु लौकिक छन्द, शास्त्र, पुराणादि और अन्य सभी काव्यों में काम में लाये जाते हैं। हिन्दी भाषा में केवल लौकिक छन्दों ही का व्यवहार होता है अतः लौकिक छन्दों ही के विषय में यहाँ लिखना उचित प्रतीत होता है।

छन्दों के मुख्य दो भाग हैं (१) मात्रिक (जाति) और (२) वर्णिक (वृत्त) फिर इनके अनेक उपभेद हैं जिन में से मुख्य इस प्रकार हैं:—मात्रिक के सम, अर्द्धसम, विषम, साधारण और दण्डक आदि और वर्णिक के सम, अर्द्धसम विषम, साधारण और दण्डक आदि।

छन्द जानने की रीति

'छन्द' को यह जानने की सहज रीति, कि वह वर्णिक छन्द है या मात्रिक, यह है कि:—

गुरु लघु चारों चरण में, क्रम तें मिलैं समान,
वर्ण वृत्त है अन्यथा, मात्रिक छन्द प्रमान।
वरणनि को क्रम एक सो, चहुँ चरणनि सम जोय;
सोई वर्णिक वृत्त है, अन्य मातरिक होय।

वर्ण

वर्ण दो प्रकार के होते हैं दीर्घ और ह्रस्व। दीर्घ को 'गुरु' कहते हैं और उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं और ह्रस्व को 'लघु' कहते हैं तथा उसकी एक मात्रा मानी जाती है।

मात्रा की परिभाषा

वर्ण के उच्चारण करने में जो समय व्यतीत होता है उसे 'मात्रा' कहते हैं। ह्रस्व वर्ण को उच्चारण करने में प्रायः उतना ही समय लगता है जितना कि एक चुटकी बजाने में लगता है और दीर्घ वर्ण को उच्चारण करने में उस से दूना समय लगता है। इसीलिए 'ह्रस्व' और 'दीर्घ' अक्षरों की क्रम से एक और दो मात्राएं कविता में मानी गई हैं। तथा इन के संकेत भी निम्नलिखित रूप में निर्धारित कर लिए गए हैं।

लघु	गुरु
।	ऽ

मात्राओं की गणना

क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः इनमें से क कि और कु तीन लघु हैं और शेष सब गुरु हैं। अनुस्वार और विसर्ग की भी दो ही मात्राएं मानी जाती हैं। जिस अक्षर पर अनुस्वार या विसर्ग होगा वही अक्षर गुरु माना जायगा, हाँ जिस वर्ण के ऊपर अर्द्धचन्द्र अनुस्वार हो उसकी एक ही मात्रा मानी जावेगी। संयोगी अक्षर के

आदि का लघु स्वर जहाँ उसे गुरुत्व प्राप्त हो गुरु माना जाता है और यदि गुरुत्व न प्राप्त हो तो लघु ही माना जाता है।

वैसे तो १५ शुभ और १६ अशुभ अक्षर माने गये हैं किन्तु पाँच अक्षर जो कि दग्धाक्षर कहलाते हैं वे हैं 'झ ह र भ ष'। रीति ग्रन्थों में लिखा है कि इन अक्षरों को छन्द के प्रारम्भ में रखना बड़ा ही हानिकर है। इन से छन्द की रोचकता न्यून हो जाती है। हाँ, इन अक्षरों को दीर्घ कर देने से यह दोष नहीं रहता है और सुर वा मङ्गलवाची शब्द रख देने से भी अशुभाक्षर का दोष दूर हो जाता है।

शुभ और अशुभ अक्षर

यद्यपि आजकल इस ओर, जितना कि प्राचीन कविता में ध्यान रक्खा जाता था, अब के कविगण विशेष ध्यान नहीं देते। उनका कहना है कि दग्धाक्षर के चक्कर में मस्तिष्क की धारा-प्रवाहिक भावनाओं को धक्का लगता है। रोचकता लाना उनके हाथ की बात है, इन अक्षरों से रोचकता घटेगी ही बढ़ेगी नहीं, ऐसा वे नहीं मानते हैं। बहुत से कोमल और श्रुति मधुर शब्द भी इन अक्षरों से प्रारम्भ होते हैं और फिर यों तो शुभाक्षरों में भी ऐसे कितने ही अक्षर मिलेंगे जिनसे प्रारम्भ होने वाले शब्द कर्कश हैं इत्यादि। सुबुध मिश्र बन्धुओं* ने भी अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'मिश्र-बंधु-विनोद' में, अपने इसी प्रकार के ही उद्गार प्रदर्शित किए हैं। युग के अनुसार यह बात जँचती भी उचित है—दग्धाक्षर का ढकोसला केवल बंधनमात्र ही जान पड़ता है।

---

*गणागण विचार एवं दग्धाक्षर को हम बखेड़ा मात्र समझते हैं इनमें कोई सार पदार्थ नहीं समझ पड़ता—

'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम-भाग भूमिका पृष्ठ ९०



हिन्दी-काव्य में निम्नलिखित आठ गण माने गए हैं।

गणागण विचार

शुभ	अशुभ
मगण SSS	सगण IIS
भगण SII	तगण SSI
नगण III	रगण SIS
यगण ISS	जगण ISI

छंद शास्त्रकारों ने लिखा है कि जिस प्रकार संसार में विष्णु भगवान् का वास है उसी प्रकार शास्त्र, पुराण और सभी कविता के ग्रन्थ इन्हीं दशाक्षरों से व्याप्त हैं। गण की गणना आदि से लेकर तीन-तीन अक्षरों में होती है अन्त में जितने अक्षर शेष रहें वे लघु और गुरु होंगे।

उपरिलिखित अशुभ गणों का प्रयोग नर-काव्य में विशेष वर्जनीय और मात्रिक छंदों में वर्जनीय है। वर्ण वृत्तों में उनका विचार नहीं किया जाता, सम्भव भी नहीं है। इस विषय में विशेष जानने के लिए श्री० बा० जगन्नाथप्रसादजी भानु कवि द्वारा लिखित 'छन्द प्रभाकर' नामक ग्रन्थ को देखना चाहिए।

यह तो हिन्दी-काव्य रचना के सम्बन्ध की बातें हुईं अब यहाँ पर संक्षेप में हिन्दी-कविता की प्रगति उसके समय-समय के स्वरूप और उसका आधुनिक रूप आदि पर भी लिख देना अनुपयुक्त न होगा।

हिन्दी कविता का प्रारम्भिक रूप

हिन्दी कविता का प्रारम्भिक रूप सिद्ध करने वाले ग्रन्थ प्रायः अप्राप्त ही से हैं किन्तु विद्वानों ने यह माना है कि वि० की सातवीं शताब्दी से हिन्दी-कविता होने लगी थी। हिन्दी का सर्व प्रथम

कवि पुष्प या पुण्ड जो कि सं० ७७० वि० में हुआ था, माना जाता है। इसके पश्चात् 'खुमानरासो' नामक ग्रंथ, जिसकी कि रचना सं० ८६० वि० के समीप हुई थी, माना जाता है। सं० १००० वि० में भुवाल कवि द्वारा लिखित श्रीमद्भगवतगीता की हस्त लिखित प्रति का भी पता चलता है। कालिंजर के नन्द कवि जो कि सं० ११३७ वि० में हुए थे तथा महोबे के जगनिक कवि जो कि सं० १२०० वि० में हुए थे और जिन्होंने कि आल्हखण्ड और महोवाखण्ड की रचना की थी, इस काल के मुख्य कविगण माने गए हैं। इस काल के ग्रन्थों का पता नहीं चलता है अतः विशेष रूप से अधिक नहीं लिखा जा सकता किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वि० सं० ७०० से हिन्दी-कविता का प्रारम्भ होगया था और वह सं० १२०० वि० तक अपने प्रारम्भिक काल में रही।

वीर-काव्य

इसके पश्चात् राज-दरबारों का आश्रय प्राप्त हो जाने के कारण कवियों ने संस्कृत साहित्य ही का अनुकरण करते हुए वीर-रस-प्रधान कविताओं को लिखना प्रारम्भ किया। वीर-गाथाओं, वीर-वंश, विरदावलियों, वीर-जीवनियों और उन दिनों के युद्धों आदि का वर्णन कविताओं में प्रचुरता से मिलता है। सं० १२७२ वि० में 'वीसलदेव रासो' की रचना हुई थी और सं० १२४० वि० के लगभग 'पृथ्वीराज रासो' को जो कि इस काल का बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है, हिन्दी भाषा के प्रथम कवि माने जाने वाले चन्द बरदाई ने रचा था। 'आल्हा' 'हम्मीर रासो' और 'विजयपाल-रासो' की भी रचना क्रमशः १३०० वि०, १३५० वि० और



१३५५ वि० में हुई मानी जाती है। इस प्रकार इन चार सौ शताब्दियों में वीर-काव्य ही का बोल-बाला रहा।

धार्मिक-काव्य

वीर-काव्य से फिर धार्मिक काव्यों की ओर कवियों का प्रवाह बढ़ चला। प्रायः सं० १४०० वि० में गुरु गोरखनाथ जी ने संस्कृत और हिन्दी भाषा में धार्मिक रचनाएँ कीं। धीरे-धीरे इन धार्मिक रचनाओं ने अपने विभिन्न-विभिन्न क्षेत्र बना लिए उनमें से मुख्य मुख्य इस प्रकार हैं—ब्रजभाषा में कविता करने वाले कवि कृष्ण-काव्य की ओर झुक पड़े और कुछ कविगण रामचन्द्रजी के यश की कवितायें लिखने लगे। कृष्ण-काव्य की चर्चा केवल ब्रज ही तक सीमित नहीं रही बङ्गाल आदि प्रान्तों में भी विद्यापति आदि कितने ही कवियों ने इस विषय पर रचनायें की थीं। इसी प्रकार राम-यश सम्बन्धी रचनाएँ गोस्वामी तुलसीदास, कवीन्द्र केशवदास आदि कवियों ने कीं।

ब्रजभाषा की कविताओं को तत्कालीन वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी वल्लभाचार्य जी से भी सहायता मिली। आपके शिष्य गो० बिट्ठलनाथ जी ने उसे और भी अधिक प्रोत्साहन दिया। आप ही के समय में अष्टछाप वाले सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास आदि और अनेकानेक अच्छे-अच्छे कवि हुए।

रहस्यवादी-काव्य

इन्हीं दिनों अनेक सम्प्रदायों की संस्थापना हो जाने के कारण सम्प्रदाय सम्बन्धी और रहस्यवाद की भी रचनाएँ कबीर, जायसी, कुतबन शेख आदि कितने ही कवियों ने की हैं। रहस्यवाद की कविताओं में यह माना गया है कि संसार में जितनी भी वस्तुएँ हमें

दिखलाई देती हैं यह सब उस अव्यक्त सत्ता का आभास मात्र हैं जिसे हम ब्रह्म, ईश्वर आदि कहते हैं। संसार के सभी कार्य्य इसी सत्ता के बल पर चलते हैं सब ही पदार्थों में, सब ही कार्यों में, हम इस सत्ता को पाते हैं। रहस्यवाद का संक्षेप में यही सारांश है।

शृंगारी काव्य

धार्मिक और रहस्यवादी कविताओं का प्रायः दो सौ वर्ष खूब दौर दौरा रहा। पश्चात् मुसलमान बादशाहों के संसर्ग से, उनकी विलासता तथा शृङ्गार-रस प्रियता के कारण सं० १६५० वि० के समीप से कवियों की धारा शृङ्गार रस की ओर बह गई। कवियों ने नायिका भेद के नख-शिख वर्णन ही में अपनी कवित्व शक्ति को लगा दिया। उन दिनों कविता का विशेष चमत्कार अलङ्कारों, सूक्तियों, युक्तियों और शब्दाडम्बरों ही में सीमित हो गया और एक प्रकार से कविता अपनी स्वाभाविकता खो बैठी। चरित्र-चित्रण, प्राकृतिक-सौंदर्य्य और आन्तरिक भावों के प्रदर्शन आदि की उन दिनों उपेक्षा सी की जाने लगी। फलस्वरूप कविता का उन दिनों का एक सीमित ही केन्द्र हो गया था।

रीति विषयक तथा ऐतिहासिक काव्य

कवीन्द्र-केशव के ग्रन्थों में भी उपरिलिखित भावों की बहुलता है। किन्तु आपने कविता के प्रवाह को फिर नए युग में पहुँचा दिया। आपने कविता के प्रत्येक अङ्ग पर रचना की तथा रीति विषयक, ऐतिहासिक और अन्य आवश्यक विषयों पर ग्रन्थ लिख कर कविता के विशेष विशेष अङ्गों पर समुचित प्रकाश डाला। भावपूर्ण कविताओं और प्रकृति सौन्दर्य के अनूठे वर्णनों की ओर कवियों का ध्यान फिर आकृष्ट हो गया और प्रायः दो सौ वर्ष



तक अर्थात् सं० १८०० वि० के बाद तक अच्छी-अच्छी रचनाओं से हिन्दी भाषा का भण्डार भरा गया।

आधुनिक काव्य

इसके पश्चात् ठीक उसी समय जब कि अंग्रेजी साहित्य में Romantic Revival का प्रादुर्भाव हुआ था हिन्दी में नवीन युग लाने वाले भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी की लेखनी काव्य-जगत् में कुशलता दिखलाने लगी। खड़ी बोली का प्रवाह प्रवाहित हुआ और कविता की धारा दूसरी ओर को बदल गई। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद, राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि से भी इस प्रगति ने यथेष्ट प्रोत्साहन पाया। धीरे धीरे खड़ी बोली की यथेष्ट उन्नति हुई। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, बा० मैथिलीशरण जी गुप्त आदि कितने ही गण्य-मान्य कवियों ने अपनी युगान्तरकारी रचनाओं से हिन्दी भाषा को ऊँचे आसन पर बिठा दिया और फलस्वरूप भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए आज मुक्तकण्ठ से हिन्दी का ही नाम लिया जाने लगा है।

छायावादी काव्य

विगत १५, २० वर्षों से पत्र पत्रिकाओं में आजकल छाया-वादी कविताओं की विशेष चर्चा होने लगी है अतः अन्त में छायावादी कविता के सम्बन्ध में भी दो शब्द लिख देना उचित जान पड़ता है। छायावाद की विद्वानों ने अनेक प्रकार से व्याख्या की है कोई उसे रहस्यवाद ही का एक अङ्ग मानते हैं तो कोई उसे अंग्रेजी की नक़ल मात्र। किन्तु सब का सारांश यही है कि विश्व की उस अव्यक्त सत्ता को जिसमें अनन्त सौन्दर्य, अक्षय आनन्द और अपरिमेय ज्ञान है, जब कवि उसे भलीभाँति अध्ययन करके अपनी कविता

द्वारा व्यक्त करने में समर्थ होता है तब ही उस कविता को हम छायावादी काव्य कहते हैं। बा० जयशंकर प्रसाद, पं० सूर्यकान्तजी त्रिपाठी (निराला), पं० सुमित्रानन्दनजी पन्त, बा० मैथिलीशरणजी गुप्त, बा० सियारामशरणजी गुप्त और नयनजी की छायावादी रचनाएं अपना एक विशेष स्थान रखती हैं। 'छायावाद' का अभी प्रारम्भिक काल ही है जब सिद्धहस्त और अनुभवी कवियों द्वारा इसमें रचनाएं होने लगेंगी तब इससे हिन्दी भाषा के अधिक उपकार की सम्भावना है।



कवि की महत्ता

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति तेषां यशः काये जरा मरणजं भयम् ॥१॥

—श्री भर्तृहरिजी

× × × ×

महीपतेः सन्ति न यस्य पार्श्वे
कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि ।
भूपाः कियन्तो न बभूवुरुर्व्यां
नामापि जानाति न कोऽपितेषाम् ॥२॥

वे सुकृती और काव्य के रस के जानने वाले कवीश्वर धन्य हैं जिनके यशरूपी शरीर में जरामरण जनित भय होता ही नहीं है ॥१॥

× × × ×

जिस राजा के पास कवीश्वर नहीं हैं उसका यश कैसे फैल सकता है, कितने ही राजा लोग इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए पर उनका कोई नाम तक भी नहीं जानता ॥२॥



लङ्कापतेः संकुचितं यशोयत्
यत्कीर्तिपात्रं रघुराज पुत्रः ।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो
न कोपनीया कवयः क्षितीन्द्रैः ॥३॥
न ब्रह्मविद्या न च राज्य लक्ष्मी—
स्तथा यथेयं कविता कवीनाम् ।
लोकोत्तरे पुंसि निवेश्यमाना
पुत्रीव हर्षं हृदये करोति ॥४॥
धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्य निषेवणम् ॥५॥
ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥६॥

× × × ×

लङ्कापति (रावण) का जो यश संकुचित हो गया और रघुराजपुत्र (श्रीरामचन्द्रजी) कीर्तिपात्र बन गए इसका एकमात्र कारण आदि-कवि (श्रीवाल्मीकिजी) के प्रभाव का है अतएव राजाओं को कवियों को प्रसन्न रखना ही उचित है ॥३॥

ब्रह्मविद्या और राज्यलक्ष्मी उतना आनन्द नहीं देती जितना आनन्द कवियों की कविता देती है । लोकोत्तर पुरुष के हृदय में कविता पुत्री के समान हर्ष (आनन्द) प्रदान करने वाली होती है ॥४॥

उत्तम काव्य का सेवन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और कलाओं में निपुणता तथा कीर्ति को उत्पन्न करता है ॥५॥

वे वन्दनीय हैं, वे महात्मा हैं और उन्हीं का यश यहाँ पर स्थिर है जिन महानुभावों ने काव्य बनाए हैं या जिनका कविता में वर्णन हुआ है ॥६॥

× × × ×

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्ता सम्मित तयोपदेशयुजे ॥७॥

—मम्मटाचार्य ।

× × × ×

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः

—यजुर्वेद अध्याय ४० मंत्र ८

× × × ×

अर्थ है मूल, भली तुक डार, सुअक्षर पत्र को देखि कै जीजै;
छंद हैं फूल, नवों रस हैं फल, प्रेम के वारिसों सींचवो कीजे ।
'दान' कहें यों, प्रवीनन सों, कवि की कविता रस राखि के पीजे;
कीरति के बिरवा कवि हैं, कबहूँ इनको कुम्हलान न दीजे ॥

—दान कवि ।

वाणीजू के वरण युग, सुवरण-कण परमान;
सुकवि सुमुख कुरुखेत परि, होत सुमेरु समान ।
कामधेनु दै आदि औ, कल्प वृक्ष परयंत;
वरणत केशवदास कवि, चित्र कवित्त अनंत ॥

—कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र ।

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग रति रङ्ग;
अनबूड़े बूड़े, तरे, जे बूड़े सब अङ्ग ।

—कविवर पं० बिहारीदासजी मिश्र ।

काव्य से यश, द्रव्य-लाभ, व्यवहारज्ञान, दुःखनाश तत्काल आनन्द और कान्ता के समान रमणीय उपदेशों की प्राप्ति होती है ॥७॥

× × × ×

परमेश्वर कवि है, मन का प्रेरक है, सर्वव्यापी है और अपने आप स्थित है । अर्थात् परमेश्वर जब कवि है तो उनकी वाणी 'वेद' काव्य सिद्ध हुए ।

कौन काल कैसे नाम उनका करेगा लोप,
जिनको प्रसिद्ध कर पाती है परम्परा;
जिनकी रसाल-रचनाओं से सरस बन,
रहता है सदैव याद, पादप हरा-भरा।
'हरिऔध' होते हैं अमर कविता से कवि,
कमनीय-कीर्ति है अमरता-सहोदरा;
सुधा हैं बहाते कवि-कुल बसुधा तल में,
सुधा कवि-कुल को पिलाती है बसुन्धरा॥
चिरजीवी कैसे वे रसिक-जन होंगे नहीं,
नाना रस ले ले जो रसायन बनाते हैं;
लोग क्यों सकेंगे उन्हें भूल जो लगन साथ,
कीर्ति-बेलि उर-आल बाल में लगाते हैं।
'हरिऔध' कैसे वे न जीवित रहेंगे सदा,
जग में सजीव कविता जो छोड़ जाते हैं;
कैसे वे मरेंगे जो अमर रचनाएँ कर,
मर-मेदिनी ही में अमर-पद पाते हैं॥
पारस समान लौह अललित मानस को,
परस परस कर कंचन बनाते हैं;
नव नव रस के रसायन विविध कर,
असरस उर में सरसता लसाते हैं।
"हरिऔध" सुधामयी, कविता कलित कर,
कविकुल बसुधा में सुधा सी बहाते हैं;
गा कर अमरता अमर वृन्द वंदित की,
लोक परलोक में अमर पद पाते हैं।

—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'।

लोकोत्तरानन्द के दाता, धाता स्वीय सृष्टि के आप।
धन्य कृती कवियों का कौशल, धन्य अमृतवर्षी आलाप ॥

—आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी॥

केवल भावमयी कला, ध्वनि मय है संगीत;
भाव और ध्वनिमय उभय, जय कवित्व नय-नीति।

—कविवर बा० मैथिलीकरणजी गुप्त।

होकर विदेह खुद को भी भूल जाते कवि,
कल काव्य-कमल-पराग जब पाते हैं;
काली कालिमा की कभी ताली खोलने में व्यग्र;
प्याली बसुधा को सुधा भरके पिलाते हैं।
ग्रथित विचारों की प्रहेलिका विचारने में,
सौम्य मूर्ति होकर प्रशांत रह जाते हैं;
जैसे ही डुबा के मन गोते हैं लगाते वह,
मानस में वैसे ही नवीन भाव आते हैं॥

—राधावल्लभ दीक्षित 'वल्लभ'।

वाणी के प्रभाव से पराक्रम से लेखनी के,
सदियों के सोये हुए भावों को जगाते हैं;
जिन्दा कर देते जान मुरदा-दिलों में डाल,
जब हम काव्य-सुधा धारा बरसाते हैं।
'नूतन' हजारों रसिकों में दरबारों बीच,
बाँधते समा हैं औ अनोखी छबि छाते हैं,
तारे नहीं जाते जहाँ शशि नहीं जाते जहाँ,
रवि नहीं जाते वहाँ कविवर जाते हैं॥

÷ ÷ ÷ ÷

हमीं विश्व में हैं जो कराल कलिकाल में भी,
बिना जप तप के अमर पद पाते हैं,
निज वाक्य-बल से उदार शूर सरदार,
बिना वायुयान आसमान पै चढ़ाते हैं।
बिना अस्त्र शस्त्र बड़े बड़े छत्र धारियों की,
पल ही में सारी शान मिट्टी में मिलाते हैं,
जीवन के पथ पर लाते भूली जनता को,
हम लूली लोमड़ी को नाहर बनाते हैं ॥
न्यारी छवि वारी स्वीय कल्पना की सृष्टि देख,
होते विष्णु विस्मित विरंचि चकराते हैं;
छूट जाता ध्यान टूट जाती शम्भु की समाधि,
दंग होते सब जब रङ्ग हम लाते हैं।
कड़क कड़क के कवित्त कहते हैं जब,
शेष के सहस्र फन झूम झूम जाते हैं;
टूट पड़ते हैं लूटने को जौहरी रसिक,
जब हम जौहर जबान के दिखाते हैं ॥

—सुकवि नूतन जी उनाव।

× × × ×

भूरि भूरि भाव भरते हैं भव्य भावुकों में,
भव-भ्रान्त पथिकों को पथ पर लाते हैं;
डालते हैं जीवन अजीवों में भी युक्तियों से,
उक्तियों से अपना अमृत बरसाते हैं।
रंग में हमारे रँग जाते हैं रसिक जन,
सोते रस रंग के मनों में लहराते हैं;



हम गुरुओं के गुरु गेय हैं हमारे गुण,
सुकवि-स्वयम्भू हम भू में कहे जाते हैं ॥
मक्खीचूस मूजी, क्रूर कृपण कुकर्मियों को,
अपनी क़लम से क़लम करते हैं हम;
बेधते हैं अंग व्यंग्य वाणों से विरोधियों के,
चमू चतुरङ्गिनी से भी न डरते हैं हम।
खूसट खबीसों को सुनाते खरी खोटी खूब,
साधु सुजनों का सदा दम भरते हैं हम;
बाजी मारते हैं अमरों से भी अमरता में,
रहते अमर कभी नहीं मरते हैं हम ॥

सरस हृदय से मिलाते हैं हृदय हम,
नीरस जनों के लिए निपट निठुर हैं;
कविता-कुशल करते हैं कल्पना की सृष्टि,
कृतियाँ हमारी मंत्र मोहनी मधुर हैं।
प्रतिमा के प्रकट दिवाकर हैं दीप्तिमान,
बुद्धि में बृहस्पति हैं नीति में विदुर हैं;
मानव चरित्रों के विचित्र-चित्र चित्रण में,
हम चतुरानन से चौगुने चतुर हैं ॥

—श्री० दिवाकर त्रिपाठी।

थोथे श्रुति सुस्मृति पुराण-धर्म पोथे सब,
भर के दिमाग़ में लगाय दिये ताले हैं;
कल्पना के कानन में मस्त घूमते हैं हम,
चूमते सुमन-भाव झूमते निराले हैं।
तीते लगते हैं रस-भोग हम पीते सदा,
विश्व-मोहिनी के हाथ प्याले पर प्याले हैं;



पूछो मत 'वचनेश' कौन मतवाले तुम?
कविता के लतवाले होते मतवाले हैं॥

—कविवर वचनेश।

× × × ×

करते हैं दूर हम हृदयों का अन्धकार,
तेज में हमारे सम चन्द्र हैं न रवि हैं;
इन्द्र से अधिक बरसाते हैं मधुर रस,
गर्व-गिरि चूर्ण करने को पूर्ण पवि हैं।
हम चार चाँद हैं लगाते विधि रचना में,
करते प्रकृति की प्रकट महा छवि हैं;
प्रेम के हैं प्रेमी नित्य नेम के हैं नेमी 'बन्धु'
गुणमयी कविता के कान्त हम कवि हैं॥

—कविवर बन्धु।

× × × ×

प्राकृतिक दृश्य देखने में हैं निमग्न कभी,
घूमते वहाँ हैं जहाँ जान के भी लाले हैं;
मित्र हो नरेश के विशेष मान पाते कभी,
कभी देश सेवा कर सहते कसाले हैं।
भ्रांति को भगाते कभी क्रांति प्रकटाते कभी,
शांति सरसाते खाते सुख के निवाले हैं;
'रसिकेन्द्र' ख़ूब बतलाया 'वचनेश' मत,
कविता की लत वाले होते मतवाले हैं॥

—कविवर रसिकेन्द्र।

स्रष्टा काव्य-सृष्टि के हो द्रष्टा निगमागम के,
इसलिए कवि तुम ब्रह्मा कहलाते हो;
विश्व के विराट रूप शेषशायी विष्णु सम,
धर्म-रक्षा हेतु जन्म धरकर आते हो।
रुद्र रूप होके कभी होते प्रयलङ्कर हो;
और कभी शङ्कर का रूप दिखलाते हो;
तुम हो कवीश्वर, जगदीश्वर महेश्वर भी,
विश्व-वंदनीय तुम्हीं विश्व को नचाते हो॥

× × × ×

आठ गण सेवा में सदैव रहते तुम्हारी,
तो भी कविराज! गणनाथ को मनाते हो;
ध्यान धरते ही बाणी रूप बन जाते आप,
तो भी वागीश्वरी के प्रथम गुण गाते हो।
और तो अमर लोक ही में जा अमर होते,
मृत्यु लोक में तुम्हीं अमर पद पाते हो;
धन्य हो कवीन्द्र! तुम्हें वन्दना है बार बार,
तुम्हीं भूमि लोक के सुरेन्द्र माने जाते हो॥

× × × ×

स्वर्ग मृत्यु लोक वा पाताल में न ऐसा स्थान,
अहो कविराज! जहाँ तव गति हो नहीं;
अगम निगम और परा अपरा का ज्ञान,
नहीं है विज्ञान जहाँ तव मति हो नहीं।
होके अनुरक्त चराचर से विरक्त भी हो,
ऐसी वस्तु नहीं जहाँ तव रति हो नहीं;

वाणी वीणा-धारिणी को वाणी से मनावे कौन,
कविवर ! तुमसा जो वाचस्पति हो नहीं ॥

—श्री छबीलदास मधुर बम्बई ।

× × × ×

कवि है परम स्वतंत्र एक बस स्वेच्छाचारी;
कवि-कीर्तन को कहे वही जो कवि हो भारी ।
अथवा शारद, शम्भु-पुत्र का जिसे इष्ट हो;
हो कवि 'चिंतक' तुल्य सिद्ध कवि दिव्य दिष्टि हो ॥
द्वैत दैव कवि सृष्टि का, विधि से डर सकता नहीं ।
सूक्ष्म शब्द में यों कहो, कवि क्या कर सकता नहीं ॥

—भूदेव शर्मा 'चिंतक' ।

× × × ×

कवि क्या है इस विश्व-वाटिका, का है विकसित अनुपम फूल;
प्रकृति सृष्टि का रत्न मनोरम, उसे मनुज कहना है भूल ।

× × × ×

नाच रहा है अपने बल से, वह यह सारा ही संसार;
उसके इंगित पर निर्भर है, जग का पतन और उद्धार ।

× × × ×

कवि के मृदुल गुणों का वर्णन, कर सकता है जग में कौन;
इस से अच्छा है यह हम भी, अब धारण कर लेवें मौन ।

—श्री गङ्गासहाय पाराशरी 'कमल' ।

× × × ×

चारों वेद शास्त्र और, हैं पुराण काव्य-मय,
भक्ति-शक्ति दे रहे जो, ब्रह्मा, विष्णु, हर की;

बालमीक तुलसी हैं, केशव कवीन्द्र आदि,
जिनने है प्रकटाई, कीर्ति चापधर की।
कौन कौरवों को और, पाण्डवों को जानता भी,
गाते जो न व्यास-कथा, भारत-समर की;
'शङ्कर' सुकवि ही सदैव देते ख्याति तथा,
करते हैं अमर सुकीर्ति वीर-वर की॥

× ÷ × ×

गुण-गण करते हैं, उनमें निवास आप,
राग-द्वेष आदि से वे, रहते रहित हैं;
बनते अमर और, देते हैं परम पद,
सब सहयोगियों को अपने सहित हैं।
विश्व की विभूतियों को, देखना तो देखो इन्हें,
ब्रह्मा, विष्णु, शिव सब, कवि में निहित हैं;
'शङ्कर' सुकवि-कीर्ति रक्षा करने से सदा,
चारों फल पाते सब, विश्व में विदित हैं॥

—गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'।

चापधर = धनुषधारी, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी।

भारत-समर = महाभारत।



बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय

बुन्देलखण्ड की सीमाएँ

बुन्देलखण्ड की प्राचीन सीमाएँ "इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस" मानी जाती हैं यद्यपि आज-कल इस भूभाग के कितने ही शासक हो गए हैं किन्तु किसी समय यह सब प्रदेश ओरछा राज्य के आधीन था और उसकी भी यही सीमाएँ मानी जाती थीं। आजकल चम्बल और नर्मदा के आस-पास के प्रान्तों को बुन्देलखण्ड में मानने और न मानने में मत-भेद हो सकता है किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड की उपरिलिखित सीमाएँ ही मानना उचित जान पड़ता है। इतने भूभाग की भाषा भी प्रायः एक ही है उसमें कहीं-कहीं ही थोड़ा-सा हेर-फेर होगया है किन्तु विशेष रूपान्तर नहीं है अतः इन सब बातों को भली प्रकार विचार करके बुन्देलखण्ड की निम्नलिखित सीमाएँ ही मानी गई हैं।



उत्तर में—यमुना नदी
दक्षिण में—नर्मदा नदी
पूर्व में—टौंस (सोन) नदी
पश्चिम में—चम्बल नदी

अतः यह सब प्रदेश जो इन चार नदियों के बीच में आया है 'बुन्देलखण्ड' माना गया है और इस प्रकार उसमें सम्मिलित प्रान्तों और राज्यों की तालिका इस प्रकार है—

झाँसी, जालौन, बाँदा और हमीरपुर प्रान्त	संयुक्त प्रान्त
सागर, दमोह और जबलपुर प्रान्त का कुछ अंश	मध्य प्रदेश
मिर्जापुर और इलाहाबाद प्रान्तों का कुछ अंश	संयुक्त प्रान्त

बुन्देलखण्ड के लिए दी० प्रतिपालसिंह जी पहरा ने अपने वृहद् ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड के इतिहास' में जो स्वरचित छन्द लिखा है उससे भी बुन्देलखण्ड की यही सीमाएँ निर्धारित होती हैं देखिए:—

उत्तर समथल भूमि गङ्ग जमुना सु-बहति है;
प्राची दिस कैमूर, सोन, कासी सु-लसति है।
दक्खिन रेवा बिंध्याचल तन सीतल करनी;
पच्छिम में चंबल चंचल सोहति मन हरनी।
तिन मधि राजे गिरि, वन, सरिता सहित मनोहर;
कीर्तिस्थल बुन्देलन कौ बुन्देलखण्डवर।



भिण्ड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ़ और भिलसा	ग्वालियर राज्य
रीवाँ, रघुराजनगर, त्योंथर, मऊगंज, व्यौहारी, बाँधवगढ़, बरौंधा, नागौद, मैहर, सुहावल कोठी, जसो, पालदेव, पहरा, तराँव भैसोंदा, कामता रजौला	बघेलखण्ड
आलमपुर आदि	इन्दौर राज्य
विरासिया, रायसेन, सांची, राजगढ़, नरसिंहगढ़, कुरवाई, पठारी, मकसूदनगढ़, मुहम्मदगढ़, वासौदा।	भोपाल राज्य
ओरछा, दतिया, पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, छतरपुर, समथर, बावनी कदौरा, सरीला, ढुरबई, बिजना, टोड़ी फतहपुर, बंका पहाड़ी, जिगनी, लुगासी, बीहट, बेरी, अलीपुरा, गौरहार, गरौली, बिलहरी और नैगवाँ, रिबई आदि।	बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों और जागीरों से।

बुन्देलखण्ड का पूर्व इतिहास

वैदिक काल में भी बुन्देलखण्ड के नगरों का वर्णन मिलता है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी चित्रकोट में रहे। कृष्णभगवान् के समकालीन राजा शिशुपाल चेदि (आधुनिक चन्देरी) के राजा थे और तब यह चेदि देश कहलाता था। शिशुपाल के वंशज कालान्तर में चेदि, हैहय और कलचुरि तथा करचुली

कहलाए । इन ही के वंशज चन्देले राजा हुए। चन्देल वंश में जेज्जाक या जयशक्ति बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ था अतः कुछ काल तक इस समस्त प्रदेश का नाम 'जेजकभुक्ति' ❀ हो गया था।

गौतम बुद्ध के समय में ग्वालियर से केन तक का देश कन्नौज के पांचालों के अधिकार में था और केन नदी के पूर्व वाले देश पर कौशाम्बी के वत्सों का अधिकार था। अवन्ति देश से उत्तर यमुना किनारे-किनारे के हिस्से को वत्स या वंश देश कहते थे। दधीचि पन्ना के आस-पास रहते थे। नरवर को निषद देश कहते थे। विद्वान् उसे पद्मावती कहते हैं। पवांयां को भी पद्मावती कहा जाता है। इस प्रकार समय-समय पर इस देश के भिन्न-भिन्न भागों को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता था किन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि यह देश बहुत ही प्राचीन है और भारतवर्ष के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखता रहा है। इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए श्री दी० प्रतिपालसिंहजी पहरा

❀ श्री दी० प्रतिपालसिंहजी पहरा ने अपने ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड के इतिहास' में इस प्रकार लिखा है:—

—मदनपुर के सन् ११८२ ई० के एक लेख से प्रगट है कि पृथ्वीराज चौहान और चन्देल परमाल के युद्ध के समय भी यह देश 'जेजकभुक्ति या शक्ति' कहलाता था। मदनपुर के शिलालेख में इस प्रकार लिखा है:—

(श्लोक)

अरुण राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सूनुना।
जेजाकभुक्ति देशोयम् पृथ्वीराजेन लूनिता॥

—बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रथम भाग।



द्वारा रचित 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' प्रथम भाग देखना चाहिए। अस्तु, आजकल इस देश को बुन्देलखण्ड कहते हैं। बुन्देला राजपूतों के नाम पर इस प्रान्त का यह नाम पड़ा है। यह देश ईसा की १४ वीं शताब्दी में बुन्देले राजपूतों के अधिकार में आया था। बुन्देला वंश काशी के सुप्रसिद्ध गहिरवार वंश से निकला है; गहिरवार क्षत्रिय, मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी के पुत्र कुश के वंशात्मज माने जाते हैं।

बुन्देलखण्ड का भारतवर्ष में स्थान

इस वंश में हेमकरन, जो कि इस वंश के मूल ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, सं० ११०० वि० के पूर्व हुए थे; आप बड़े ही वीर थे। आपकी नवीं पीढ़ी में सं० १४०० वि० के लगभग सोहनपाल हुए तथा आपकी दसवीं पीढ़ी में सं० १५६० वि० के लगभग महाराज रुद्रप्रताप हुए, जिन्होंने सं० १५८८ वि० में गढ़कुढ़ार के स्थान में ओरछे को अपनी राजधानी बनाया। यथा समय फिर आपके वंश में महाराजा भारतीचन्द, महाराजा मधुकुरशाह, इन्द्रजीतसिंह, वीरसिंहदेव, जुझारसिंह, पहाड़सिंह, हरदौल और विक्रमाजीतसिंह आदि अनेक यशस्वी, दानी और वीरशार्दूल नरेश हुए हैं। बुन्देलखण्ड-केशरी महाराज छत्रसाल भी इसी वंश के रत्न थे। इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए पं० केशवदासजी मिश्र द्वारा रचित 'श्री वीरसिंहदेव चरित्र' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए।

ऐतिहासिक तत्वान्वेषियों ने बुन्देलखण्ड को भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण भूभाग माना है। गिरिराज हिमायल को जब वे भारतवर्ष के मुकुट की उपमा देते हैं तब वीर और कवि-प्रसविनी



बुन्देलखण्ड की वन्दनीय भूमि को भी निस्संकोच उसका सुदृढ़, उन्नत, विशाल वक्षस्थल तथा सब में नवस्फूर्ति संचालन करने वाला हृदय मानते हैं।

वीरश्रेष्ठ कहलाने वाले राजपूताने की भूमि यदि वीरों की महत्ता के लिए प्रसिद्ध है तो बुन्देलखण्ड की भूमि भी वीरों और कवियों दोनों ही को उत्पन्न करने की दृष्टि से भारतवर्ष में अपना अद्वितीय स्थान रखती है।

बुन्देलखण्ड में कवियों की बहुलता के कारण

वह देश वह प्रान्त जिसमें एक भी कवि उत्पन्न हो जाता है धन्य माना जाता है। हर्ष है कि कवि और वीर-प्रसविनी इस बुन्देलखण्ड की भूमि को एक दो ही नहीं सहस्रों अच्छे अच्छे कवियों को उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त है। कवियों की महत्ता पर पूर्व में यथेष्ठ लिखा जा चुका है फिर भी यहाँ इतना लिख देना उचित है कि सचमुच ही कविता ईश्वर-प्रदत्त विभूति है। जिस पर परमात्मा की, प्रकृति की दया हो जाय उसे ही यह जन्म से प्राप्त हुआ करती है। इसे प्राप्त कर लेने पर भी इसमें भली प्रकार सफलता प्राप्त कर लेना खिलवाड़ नहीं है; सहस्रों में कोई दो एक ही भाग्यशाली कवि कविता में सफलता प्राप्त कर यश और कीर्ति के भाजन बन सकते हैं, रससिद्ध कवीश्वर कहला सकते हैं। किसी कवि ने उचित ही कहा है कि:—

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।

साहित्यकारों ने कवि को
"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः"
माना है। वास्तव ही में कवियों का स्थान बहुत ही ऊँचा होता है, कवियों की शक्ति अपार होती है। कविगण अपनी प्रसाद-मयी कविता द्वारा ही कठिन से कठिन कार्य्य कर सकने में समर्थ हो जाते हैं। वे अपनी काव्य-सुधा से मृतक हृदयों में भी जीवन-संचार कर देते हैं, सोये हुए भावों को अपनी ओजमयी कविता द्वारा जाग्रत कर सकते हैं, निराशापूर्ण हृदयों में भी रसमयी कविता से नवस्फूर्ति भर सकते हैं और अकर्मण्य को भी प्रतिभा तथा उत्साहपूर्ण कविता द्वारा उन्नत-पथ की चरम सीमा पर पहुँचा सकते हैं। वैसे तो Poets are born not made की लोकोक्ति सर्वथा ठीक ही है; फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि प्रत्येक विद्या और कला के विकास के लिए अनुकूल आभ्यन्तरिक और बाह्य सामग्रियाँ अभिप्रेत हुआ करती हैं। बुन्देलखण्ड को प्रकृति ने अनोखी छटाएं और दृश्य प्रदान किए हैं। ऊँची नीची बिंध्याचल की शृङ्खलाबद्ध पर्वतमालाएँ, विशाल शाखाओं वाले गगनचुम्बी बट तथा अन्य वृक्ष, हरे हरे सघन वन-कुंज और निर्मल जल से प्रपूरित सर-सरिताओं को देखकर ऐसा कौनसा मानव-हृदय होगा जो आनन्द-विभोर होकर न नाचने लगे। जब जनसाधारण के हृदयों पर बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक दृश्यों का इतना प्रभाव पड़ता है तो प्रकृति-पुजारियों और 'स्वान्तः सुखाय' कविता करने वाले कवियों के आनन्द का तो कहना ही क्या है। यही कारण है कि बुन्देलखण्ड की भूमि में पौराणिक काल ही से समय-समय पर अनेकानेक सुकवि और वीर आत्माएँ आविर्भूत

हुई हैं।❀ संस्कृत साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवि बाल्मीकीय रामायण के कर्त्ता महर्षि बाल्मीकजी, असाधारण विद्याओं के भण्डार तपोनिधि पाराशरजी, अष्टादश पुराणों तथा महाभारत के रचयिता कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास, वीर मित्रोदय, वृहद्कोष के रचयिता मित्र मिश्र तथा प्रबोध चन्द्रोदय और शीघ्रबोध नामक ग्रन्थों के लेखक क्रमशः पं० कृष्ण मिश्र तथा पं० काशीनाथजी मिश्र इसी पवित्र भूमि के उज्ज्वल रत्न थे।

❀ (१) महर्षि बाल्मीकजी, बुन्देलखण्ड के जालौन प्रान्तान्तर्गत बबीना नामक ग्राम में रहते थे। यह ग्राम कालपी से ८-९ मील दक्षिण की ओर है। इस ग्राम में अब भी आपका एक स्थान बतलाया जाता है।

(२) श्री पाराशरजी, जालौन प्रान्त के परासन नामक ग्राम में रहते थे अब भी इस ग्राम में पाराशरजी का एक मन्दिर है ऐसा कहा जाता है।

(३) कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजी की जन्मभूमि, बुन्देलखण्ड के जालौन प्रान्तान्तर्गत कालपी नामक तहसील में है। यहाँ पर एक व्यास-टीला है। कहते हैं व्यासजी का जन्म इसी स्थान पर हुआ था। यहाँ पर प्रति वर्ष व्यास-पूर्णिमा को आषाढ़ मास में एक मेला लगता है। व्यासजी की पवित्र स्मृति में श्री पं० रामगोपाल जी मिश्र बी० एस-सी० डिप्टी कलेक्टर के उद्योग से सं० १९८३ वि० में माधवराव सिंधिया व्यास पाठशाला नामक अंग्रेज़ी पाठशाला की भी स्थापना हुई थी। रा० ब० पं० गोकुलप्रसादजी तिवारी कैप्टेन ने दस सहस्त्र रुपये दान में देकर इस पाठशाला की सहायता की थी।

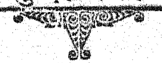


इसी प्रकार प्रायः १२ वीं शताब्दी में (सं० १२०० वि०) परमाल चन्देल के दरबारी कवि महोबे के जगनिक कवि, जिन्होंने कि आल्हा तथा महोवाखण्ड की रचना की है, हुए थे। प्रातः-स्मरणीय हिन्दू जाति के सुषेणवत् चिकित्सक रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी की भी लीलाभूमि बुन्देल-खण्ड ही रही है।

हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य्य, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता ओरछे के कवीन्द्र केशवदासजी मिश्र, आपके अग्रज महाकवि बलभद्रजी मिश्र आपके अनुज पं० कल्याणजी मिश्र कवीन्द्र केशव के पुत्र पं० बिहारीदासजी मिश्र तथा प्रपौत्र पं० हरि-सेवकजी मिश्र तथा बालकृष्णजी शिवलालजी मिश्र इसी बुन्देलखण्ड ही में उत्पन्न हुए थे।

---

(४) वीर मित्रोदय नामक—बृहद् संस्कृत-विश्व कोष [Encyclopaedia] के रचयिता मित्र मिश्र ओरछा ही के निवासी थे। और कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र के पूर्वज थे। आपने ९ लाख श्लोकों में 'वीर मित्रोदय' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ-रत्न की हस्त-लिखित प्रति किसी प्रकार जर्मनी पहुँच गई और वह वहाँ पर प्रकाशित हुई। चौखम्भा बनारस से इसका कुछ अंश प्रायः ७०, ७९ भागों में प्रकाशित होसका है और अब तक केवल १३८४१० श्लोकों ही का शोध मिल सका है। अवशेष अंश का अभी मिलना कठिन जान पड़ता है। आपका विशेष परिचय 'बुन्देल-वैभव' के एक पृथक् भाग में देने का आयोजन किया जा रहा है। अतः यहाँ उदाहरणार्थ आपकी कविता के तीन चार श्लोक ही उद्धृत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।



महाराजा बीरबल और टोडरमल भी इसी बुन्देलखण्ड ही में उत्पन्न हुए थे पश्चात् अकबर बादशाह के दरबार के रत्नों में स्थान पाकर जिन्होंने अपना नाम इतिहास में अमर कर दिया है। रहीम कवि का निवास-स्थान भी बुन्देलखण्डांतर्गत चित्रकोट में अधिक समय तक रहा है।

मङ्गलाचरणम्

सिंदूरारुण गण्ड मण्डल गलद्दानाम्भसां धारया।
सिंचन्तं पदसक्त भक्त जनता विघ्नौवधूलीरिव॥
धम्मिल्लालि मिवालि वृन्द मनिशं मूर्ध्नादधानं हर–
प्रेयांसं गिरिजाङ्गजं गजमुखं वन्देऽर विन्दे क्षणम्॥

\+ \+ \+ \+

वंश वर्णन

बुन्देल क्षितिपाल वंश विलसद्रत्नं प्रयत्नं विना।
यः पृथ्वीं निखलां विधाय वशगां राज्यं चकाराद्भुतम्॥
शौर्योदार्य गुणैरगण्य महिमा दाताऽव दाताशयः।
श्रीमान् कीर्तिसुधा समुद्र लहरी निर्धौतदिङ् मण्डलः॥

अस्ति स्वस्तिलकायमान करका नीहार हार प्रभा।
प्रादुर्भाव पराभव व्यसनिभिर्लिम्पन यशोभिर्दिशः॥
मुष्णन वैरि महांसि विज जनतां पुष्णन समंबन्धुभिः।
दिग्विख्यात् बुन्देल वंश तिलकः श्रीवीरसिंहो नृपः॥

प्रीतध्वान्तेन नित्यं प्रसृमरमहसा मुग्ध दुग्धाब्धिभासः।
वीरः श्रीवीरसिंह क्षिति तिलकलसत्कीर्ति सोमेन साकम्॥

ओरछा के हरीराम शुक्ल (व्यासजी) चतुर्भुज कवि, कृष्ण सनाढ्य आदि बुन्देल वंशावली के रचयिता शाहजू पण्डित, पन्ना के लाल, करन तथा पजनेस कवि, दतिया के गदाधर कवि,

---

अद्धा स्पर्द्धा करिष्यत्ययमिति मिषतो लांछनस्याजनार्कं ।
वक्त्रं कृत्वा विधात्रा दिशि दिशि शनकैर्भ्राम्यते शीतरश्मिः ॥

\+ \+ \+ \+

(५) प्रबोध-चन्द्रोदय के रचयिता कृष्ण मिश्र भी ओरछे ही के रहने वाले थे।

(६) शीघ्रबोध के कर्त्ता, पं० काशीनाथजी मिश्र, पं० कृष्णदत्तजी मिश्र के पुत्र तथा कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र के पूज्य पिता जी थे। 'शीघ्रबोध' का आप ही के समय में आशातीत प्रचार होगया था और अब तो धीरे-धीरे उसने जनता के हृदय पर इतना आधिपत्य जमा लिया है कि 'शारदा एक्ट' स्वीकृत हो चुकने पर भी "अष्ट वर्षा भवेद्-गौरी" की दुहाई दिए विना लोगों से नहीं रहा जाता है।

७—गोस्वामी तुलसीदासजी बुन्देलखण्डान्तर्गत राजापुर (बाँदा) ही में अधिक समय रहे थे।

८—कवीन्द्र केशवदासजी उनके पूर्वज और वंशज ओरछे में रहे थे।

९—महाराजा बीरबल का असली नाम महेशदास था आप कालपी में उत्पन्न हुए थे परचात् अकबर के दरबार में पहुँचने पर 'बीरबल' की उपाधि मिल गई थी।

१०—राजा टोडरमल खत्री भी कालपी के रहने वाले थे उनके पूर्वजों का मकान अब भी एक प्रतिष्ठित खत्री परिवार के अधिकार में है।

११—तानसेन का असली नाम त्रिलोचन मिश्र था। पश्चात् आप मुसलमान हो गये थे। आप ग्वालियर के रहने वाले थे।



तथा भारत प्रसिद्ध गायक ग्वालियर के तानसेन नामक कवि, चरखारी के खुमान, जवाहर, मोहनलाल तथा मान कवि, छतरपुर के ठाकुर कवि और गङ्गाधर व्यास, अजयगढ़ के लल्ला परमानन्द, मऊ के कुंजीलाल, जनकेश और गिरधारी कवि, सेहुँड़ा के हरिकेश तथा जैतपुर के मण्डन कवि, बाँदा के पद्माकर भट्ट और झाँसी के लाला नवलसिंह, तथा हृदेश कवि, जो कि हिन्दी-साहित्याकाश के उज्ज्वल और दैदीप्यमान रत्न हैं, इसी बुन्देलखण्ड की भूमि से उत्पन्न हुए, सुकवि थे।

बुन्देलखण्ड के देशी नरेशों का सहयोग

प्राकृतिक दृश्यों के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के विद्या-प्रेमी नरेशों और अन्य श्रीसम्पन्न व्यक्तियों की भी प्रोत्साहन देने वाली संरक्षकता ने भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कार्य्य किया है। बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग देशी राज्यों से घिरा हुआ है। ओरछा, पन्ना, छतरपुर, बिजावर, अजयगढ़, चरखारी, दतिया और समथर बुन्देलखण्ड के मुख्य मुख्य राजस्थान हैं; पूर्वकाल ही से इन राज्यों के अधिपति कविता-प्रेमी होते आए हैं, ओरछा नरेश महाराजा मधुकरशाह, इन्द्रजीतसिंह (धीरजनरिन्द्र) महाराजा भारतीचन्द और महाराजा विक्रमाजीतसिंह, पन्ना-नरेश बुन्देलखण्ड-केशरी महाराजा छत्रसाल, चरखारी-नरेश महाराजा विक्रमादित्य, महाराजा रतनसिंह, मलखानसिंह; दतिया-नरेश महाराजा शिवदास शत्रुजीतसिंह, बिजावर-नरेश महाराज भानुप्रताप, सिमथर नरेश राजा हिन्दूपति, चँदेरी-नरेश राजा देवीसिंह, बिजना के जागीरदार भारथशाह तथा बँधौरा के जागीरदार राजा दुर्जनसिंह अच्छे-अच्छे सुकवि और कवियों के आश्रयदाता हुए हैं।

सुनते हैं कि प्राय: १००, १२५ कवि केवल ओरछा राज्य के ही आश्रित होकर सदैव रहते थे और महाराजा श्री वीरसिंह देव प्रथम के राज्य-काल में तो यह संख्या प्राय: ३०० तक पहुँच गई थी।

पन्ना, छतरपुर, बिजावर, अजयगढ़, चरखारी, दतिया और सिमथर आदि राज्यों में भी कवियों को यथोचित आश्रय मिलता रहा है, और अब भी किसी न किसी रूप में ओरछा तथा इन सब राज्यों द्वारा कविता का आदर तथा कवियों का सम्मान होता ही रहता है। इस प्रकार हिन्दी भाषा को बुन्देलखण्ड में प्रचलित तथा जीवित रखने में हमारे देशी नरेशों का बहुत कुछ हाथ रहा है और प्राचीन काल में बुन्देलखण्ड में कवियों की बहुलता के अन्य कारणों में से यह भी एक मुख्य कारण है।

कवियों को आश्रय देकर देशी नरेश भी किसी घाटे में नहीं रहे हैं, उनका उस समय तो मनोरंजन हुआ सो तो हुआ ही किन्तु लाखों रुपया व्यय करके भी उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बनाने का इससे सुलभ कोई अन्य साधन है भी तो नहीं, किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है:—

*"बाल्मीक प्रभवेण रामनृपति व्यासेन धर्मात्मजो,
व्याख्यात: किल कालिदास कविना श्री विक्रमाङ्कोनृप:।
भोजश्चित्तप विल्हण प्रभृतिभि: कर्णोपि विद्यापतेः
ख्यातिं यान्ति नरेश्वरा: कविवरै: स्फारैर्न भेरी रवै:॥"

---

*बाल्मीक कवि ने श्रीरामचन्द्रजी का वर्णन किया है, व्यासदेव ने युधिष्ठर का वर्णन किया है, कालिदास कवि ने विक्रमदेव का वर्णन किया है, चित्तप और विल्हण आदि कवियों ने भोजदेव का वर्णन किया है। विद्यापति ने राजा कर्णदेव का वर्णन किया है इस प्रकार राजाओं की प्रसिद्ध कवियों के द्वारा ही होती है, नगारा पीटने से नहीं।

कविगण, भाषा भारती का भण्डार भरने तथा बुन्देलखण्ड की कीर्ति को ऊँची करने के साथ ही साथ अपने आश्रयदाताओं के यशः शरीर को सर्वदा के लिए अमर बना गये हैं। अस्तु,

हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य्य कवीन्द्र केशव

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है बुन्देलखण्ड में हिन्दी भाषा के प्रथम कवि आल्हखण्ड के रचयिता महोबे के जगनिक कवि कहे जाते हैं। ये महानुभाव बारहवीं शताब्दी में हुए थे और प्रसिद्ध कवि चन्द बरदाई के समकालीन माने जाते हैं। किन्तु इन महाभाग की कविता अप्राप्त ही सी है, प्रचलित आल्हखण्ड की पुस्तकों में इनकी कविता की एक भी पंक्ति नहीं है, हाँ छन्द की छायामात्र और ढंग अवश्य ही आपका है। कालिंजर के राजा नन्द भी जो कि सं० ११३७ में हुए कवि माने जाते हैं। किन्तु इस समय के कवियों की कविताएँ प्रायः अप्राप्त ही सी हैं अतः बुन्देलखण्ड में हिन्दी कविता का श्रीगणेश करने वाले सोलहवीं शताब्दी में प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी* तथा हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य्य ‡कवीन्द्र केशवदासजी मिश्र ही माने जाते हैं, गोस्वामी तुलसीदासजी का कविता-काल सं० १६३० वि० से तथा कवीन्द्र केशवदासजी का कविता-काल सं० १६४० वि० से प्रारम्भ होता है। हिन्दी भाषा की कविता

---

* गोस्वामीजी का विस्तृत जीवन-चरित्र लेखक की 'सुकवि-सरोज' (द्वितीय भाग) नामक पुस्तक में देखिए। (लेखक)

‡ कवीन्द्र केशव का विस्तृत जीवन-चरित्र लेखक की 'सुकवि-सरोज' (प्रथम-भाग) नामक पुस्तक में देखिए। (लेखक)

प्रारम्भ करते समय इन दोनों ही महाकवियों को निम्नलिखित चौपाई और दोहा लिख कर अपनी झिझक तथा अपने-अपने हृदयोद्‌गार प्रदर्शित करने पड़े थे।

भाषा भणित मोर मति भोरी।
हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी।

भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंद मति, तिहि कुल केशवदास॥

—कवीन्द्र केशवदासजी।

इसी शताब्दी में आप ही के समकालीन महाराजा इन्द्रजीत सिंह (धीरजनरिन्द्र) व्यासजी, बलभद्रजी, गोप, पुरुषोत्तम, मोहनलाल, कपूर मिश्र, मोहनदास मिश्र, खेमदास, मण्डन आदि कवि हुए। सत्रहवीं शताब्दी के मध्यकाल में बुन्देलखण्ड के हिन्दी-कवियों का प्रवाह कई धाराओं में प्रवाहित हो चला था। उसमें कुछ कवि तो वीर-रस और कथा प्रसांगिक की ओर झुक पड़े थे और कुछ श्रृङ्गार रस तथा नायक-नायिका-भेद की ओर। इस समय के मुख्य मुख्य कवियों के नाम इस प्रकार हैं:—

महाराजा छत्रशाल, प्राणनाथ, मेघराज, लाल कवि, अनन्य, बिहारीदास मिश्र, महाराज विक्रमाजीतसिंह 'लघु' बंसी, विष्णु-दास, सुदर्शन, कृष्णदास, श्रीपतिभट्ट, कोविद मिश्र, वैकुण्ठमणि शुक्ल, हरिचन्द, देवीदास, रसनिधि, मोहन भट्ट, कुन्दन, दिग्गज, घनराम, गुलालसिंह, केशवराय, राजा दलपतिराय, कुं० तिलोक-सिंह, भावन, रसलाल, खङ्गराम, रतन, हरिसेवक मिश्र,

हरिकेश, बख्शी हंसराज, हिम्मतसिंह, कृष्ण, गुणदेव, राजा दलसिंह, खण्डन, पंचमसिंह, भारथशाह, शाहजू पण्डित, गोपालभट्ट, विजयाभिनन्दन, शिवनाथ और पुण्डरीक आदि। अठारहवीं शताब्दी में शृङ्गार और वीर दोनों ही रसों की कविताओं को विशेष प्रोत्साहन मिला। इस शताब्दी में कवि पद्माकर, ठाकुर, प्रताप नवखान, करन, नवलसिंह, मान, नरोत्तम, गङ्गाधर, पजनेस, गदाधर, अवधेश, शङ्कर, हरिजन, हृदयेश, परमानन्द, काली कवि, जनकेश, भगवानदीन, कृष्ण बल्देव, वर्मा, राधालाल गोस्वामी आदि मुख्य मुख्य कवि हुए हैं, तब से यद्यपि समय समय पर और भी अनेकानेक अच्छे कवि होते रहे हैं किन्तु वर्तमान युग में कविता की चमत्कारिणी उन्नति हुई है। कविवर बा० मैथिलीशरणजी गुप्त, श्री वियोगी-हरिजी, श्री० पं० भगवन्नारायणजी भार्गव, मुन्शी अजमेरीजी, श्री सियारामशरणजी गुप्त, श्री० द्वारिकाप्रसादजी गुप्त 'रसि-केन्द्र' श्री० शारद रसेन्द्रजी, घासीरामजी व्यास, सेवकेन्द्रजी, नाथूलालजी माहौर, श्रवणेशजी, रामकिशोरजी शर्मा 'किशोर', मिलिन्दजी, घनश्यामदासजी पाण्डेय, चतुरेशजी आदि अच्छे अच्छे कवियों ने अपनी युगान्तरकारी रचनाओं से भाषा-भारती का भंडार भरा है।

कविवर बा० मैथिलीशरण जी गुप्त की 'भारतभारती' नामक पुस्तक ने बुन्देलखण्ड ही में नहीं अपितु भारत भर के हिन्दी-भाषा भाषियों में निराली लहर उत्पन्न कर दी थी। इसी प्रकार श्री वियोगीहरि जी की 'वीर सतसई' नामक सुन्दर पुस्तक ने, जिस पर कि १२००) का मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक भी आपको प्रदान किया गया था, वीररस की चर्चा का जोरों में

सूत्रपात कर दिया था। आपके अतिरिक्त श्री० पं० भगवन्नारायणजी भार्गव एडवोकेट झाँसी, मुंशी अजमेरीजी चिरगाँव, बा० द्वारिकाप्रसादजी गुप्त 'रसिकेन्द्र', बा० सियारामशरणजी गुप्त चिरगाँव, श्री घासीरामजी व्यास मऊ, श्री श्रवणेशजी झाँसी, शारद रसेन्द्रजी चित्रकोट आदि अनेक कवियों ने अपनी सुन्दर रचनाओं से बुन्देलखण्ड का मस्तक ऊँचा किया है।

बुन्देलखण्ड में अन्वेषण करने की आवश्यकता है

सच तो यह है कि यदि भली प्रकार अन्वेषण किया जाय और बुन्देलखण्ड के प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी सुकवियों की कृतियों का परिचय हिन्दी संसार के समक्ष रक्खा जाय तो बुन्देलखण्ड का गौरव आजकल की अपेक्षा कई गुणा बढ़ जावे। बुन्देलखण्ड का एक एक ग्राम वीर-स्मृति-चिह्नों, शिला-लेखों और ऐतिहासिक सामग्रियों से तथा बुन्देलखण्ड का प्रत्येक घर हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों से भरा पड़ा है। सहस्रों हस्त-लिखित प्राचीन ग्रंथ बस्तों में बँधे पड़े सड़ रहे हैं, अनेक अमूल्य कृतियाँ जिनको हमारे पूर्वजों ने अहर्निश परिश्रम करके बनाया होगा हमारी उदासीनता के कारण झींगुर आदि कीड़ों के भोज्य पदार्थ बन चुके तथा बन रहे हैं किन्तु खेद है हमारा इस ओर समुचित ध्यान ही नहीं जाता है। नवीन साहित्य द्वारा भाषा-भारती का भण्डार भरने के साथ ही साथ यह आवश्यक है कि हम अपनी इस अवशेष अमूल्य निधि की रक्षा तथा उसके समुचित प्रचार की व्यवस्था करें।

मैंने 'सुकवि' 'विशाल-भारत' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं द्वारा 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' प्रयाग और 'काशी नागरी प्रचारणी-

५

सभा' बनारस का भी इस ओर ध्यान आकर्षित किया था किन्तु खेद है अब तक इस ओर किसी का भी समुचित ध्यान नहीं गया है क्या ही अच्छा हो कि बुन्देलखण्ड के देशी नरेश इस ओर अपनी थोड़ी सी दयादृष्टि कर दें और इस प्रकार इस पुण्यतम कार्य्य का शीघ्र ही श्रीगणेश हो जाय।

प्राचीन गद्यात्मक ग्रन्थ

सम्भव है इस उन्नति के युग में कुछ महानुभावों की यह भी धारणा हो कि जब आजकल इतने अधिक मौलिक ग्रंथों की सृष्टि हो रही है तब प्राचीन ग्रंथों को खोजने का परिश्रम ही क्यों किया जाय, किन्तु मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। अन्वेषण करते समय मुझे पद्यात्मक ग्रंथों के अतिरिक्त कितने ही ऐसे गद्यात्मक ग्रंथ मिले हैं जिनको प्रकाशित करा देने से हिन्दी भाषा के कितने ही अङ्गों के अभाव की पूर्ति हो सकती है और उनमें मौलिकता ही का आनन्द मिल सकता है तथा कितने ही नवीन विषयों का उनसे बोध हो सकता है; 'ग्रह-निर्माण' नामक एक हस्त-लिखित पुस्तक में इंजीनियरिङ्ग ब्रांच की ऐसी ऐसी गूढ़ बातें मैंने देखीं कि चित्त प्रसन्न हो गया, फिर उसी टक्कर की पुस्तक मैंने हिन्दी के सभी सूचीपत्रों में खोज डाली किन्तु सर्वत्र ही उसका अभाव पाया; अधिक सम्भव है यह मेरे अल्पज्ञान के कारण हो किन्तु मेरी तो दृढ़ धारणा है कि प्राचीन हस्त लिखित ग्रंथों के प्रकाशन से हमारा बहुत कुछ उपकार हो सकता है। इसी प्रकार 'अश्व-परीक्षा' 'धनुष विद्या' 'कृषिकार्य्य' 'उपवन-विनोद' 'वैद्य-परीक्षा' 'रोग-परीक्षा' 'रत्न परीक्षा' आदि कितने ही आवश्यक विषयों पर लिखे हुए प्राचीन ग्रंथ मुझे स्थान स्थान पर मिले हैं। यह लिखते हुए मुझे हर्ष होता है कि बुन्देलखण्ड का साहित्य अपने पद्यात्मक

और गद्यात्मक दोनों ही विभागों में प्राचीन काल से बढ़ा-चढ़ा हुआ है और आजकल भी अनेक अच्छे गद्य लेखक बुन्देलखण्ड में वर्तमान हैं प्रस्तुत ग्रंथ में केवल कवियों ही के सम्बन्ध में लिखा गया है अतः गद्य लेखकों की केवल संक्षिप्त नामावली ही यहाँ देकर मैं सन्तोष करता हूँ। यथा समय एक पृथक भाग में गद्य लेखकों के सम्बन्ध में भी लिखने का प्रयत्न करूँगा और तब ही इस विषय के विस्तृत विचार उसमें लिखूँगा। वैसे, जैसा कि मैं पहिले लिख चुका हूँ, पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों ही प्रकार की रचनाओं को काव्य और साहित्य का मुख्य अङ्ग माना है। फिर भी पद्यात्मक कवियों के संग्रह में गद्यात्मक रचना करने वाले महानुभावों को मिला देने से गड़बड़ी की सम्भावना थी। अस्तु, संक्षिप्त नामावली इस प्रकार है:—

बुन्देलखण्ड के वर्तमान गद्य-लेखक

नाम लेखक	प्रकाशित ग्रन्थ	अप्रकाशित ग्रन्थ
श्री सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंहदेवजी ओरछा-नरेश		हाकी (बड़ी ही खोज से लिखा गया ग्रन्थ है)।
स्व० पं० काशीनाथजी मिश्र चंदेरी		'बुन्देलखण्ड का साङ्गोपाङ्ग विस्तृत इतिहास'
स्व० बा० कृष्णबल्देवजी वर्मा कालपी	(१) भर्तृहरि नाटक (१) प्रेतयज्ञ नाटक (३) छत्र-प्रकाश	



नाम लेखक	प्रकाशित ग्रन्थ	अप्रकाशित ग्रन्थ
रायबहादुर रावराजा श्री० पं० श्यामबिहारीजी मिश्र एम० ए० (मिश्र-बन्धु)	(१) आत्मशिक्षण (२) उत्तर भारत (३) जापान का इतिहास (४) नेन्त्रोन्मीलन (५) पद्य-पुष्पांजलि (६) पूर्वभारत (७) भारतवर्ष का इतिहास (८) भूषण ग्रन्थावली (९) मिश्र-बन्धु-विनोद (१०) वीरमणि (११) रूस का इतिहास (१२) स्पेन का इतिहास (१३) सुमनांजलि (१४) सूरसुधा (१५) हिन्दी-नवरत्न आदि	पारि-जात हरण वालि-वध गो-भक्त दिलीप वीर-ज्योति पूज्य-प्रदर्शन
श्री० वियोगीहरिजी, पन्ना	(१) अनुराग वाटिका (२) कवि-कीर्तन (३) गीता में भक्तियोग (४) पगली (५) प्रबुद्ध यामुन (६) प्रेमयोग (७) भजन-संग्रह (८) विनयपत्रिका (९) वीर सतसई (१०) साहित्य रत्न मंजूषा (११) साहित्य विहार (१२) हिन्दी-गद्य-रत्नावली (१३) हिन्दी पद्य-रत्नावली (१४) ब्रज-माधुरी-सार आदि	



नाम लेखक	प्रकाशित ग्रन्थ	अप्रकाशित ग्रन्थ
श्री० पं० भगवन्नारायणजी भार्गव एडवोकेट ex. M. L. C. झाँसी	(१) कीचक (२) रचनाओं का संग्रह	
विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्तजी शर्मा गौड़ ग्वालियर	(१) स्त्रियों के व्यायाम	
साहित्यालङ्कार बा० द्वारिकाप्रसादजी गुप्त 'रसिकेन्द्र' कालपी	(१) अज्ञातवास (२) सती सारंधा (३) आत्मार्पण (४) हरिजन्म (५) बाल-विभूति	
श्री० पं० रामेश्वरप्रसादजी शर्मा पूर्व साहस-सम्पादक झाँसी	(१) अस्तोदय स्वावलंबन (२) सीताराम (३) उदय सरोज (४) कमल कुमारी (५) दुख का मीठापन (३) उद्योगी पुरुष (७) दादाभाई नौरोजी (८) निशीथ चिन्ता (६) पृथ्वीराज (१०) महादेव गोविन्द रानाडे	

नाम लेखक	प्रकाशित ग्रन्थ	अप्रकाशित ग्रन्थ
दी० प्रतिपालसिंहजी पहरा छतरपुर	(१) बुन्देलखंड का इतिहास प्रथम भाग (२) वीर बाला (३) खेल शतक (४) औद्योगिक शिक्षा (५) छत्र प्रकाश (६) होली हजारा (७) श्रृङ्गार कुण्डली (८) विदुर-प्रजागर आदि	बुन्देलखंड का इतिहास १३ भाग
श्री० बा० वृन्दावनलालजी वर्मा बी० ए० एल० एल-बी० एडवोकेट झाँसी आप बुन्देलखण्ड के सर वाल्टर स्काट की उपाधि से स्मरण किए जाते हैं।	(१) गढ़ कुण्डार (२) प्रेम की भेंट (३) कुण्डली चक्र (४) लगन (५) सङ्गम (६) हृदय की हिलोर	
श्री० नयनजी चिरगाँव	(१) ओरछे की रानी	
श्री० पं० रघुनाथविनायकजी धुलेकर एम० ए०, एल-एल० बी० एडवोकेट झाँसी	(१) मातृभूमि अब्दकोष। मातृभूमि नामक मासिकपत्र के आप सम्पादक भी रहे हैं।	
श्री० बा० कृष्णानन्दजी गुप्त चिरगाँव (झाँसी)	(१) केन (२) अंकुर (३) प्रसादजी के दो नाटक	

इनके अतिरिक्त श्री० पं० अवध उपाध्यायजी एम०ए० पन्ना, बा० व्रजमोहनजी वर्मा कालपी, सहकारी सम्पादक 'विशाल भारत', श्री० बा० मूलचन्दजी अग्रवाल बी० ए०, श्री० पं० मन्नीलालजी पाण्डेय बी० ए०, एल-एल० बी० उरई, पं० वेणीमाधवजी तिवारी Ex-Chairman D. B. उरई, श्री० भागीरथजी सेठ, श्री० गोविन्ददासजी सेठ बी० ए० झाँसी, बा० देवीप्रसादजी विद्याभूषण झाँसी, पं० पुरुषोत्तमनारायणजी चौबे बी० ए०, एल-एल० बी० ललितपुर, पं० ठाकुरदास जी जैन बी० ए० टीकमगढ़, श्री० श्रीप्रकाशदेवजी जैतली कालपी, श्री० हरिप्रसादजी जैन बी० ए० एल० एल० बी० ललितपुर, श्री० पं० रामकिशोरजी शर्मा 'किशोर' बी० ए०, श्री० हजारीलालजी श्रीवास्तव, श्री० मणिरामजी कंचन तालबेहट (झाँसी), श्री० बा० बालाप्रसादजी बी० काम० आदि कितने ही सिद्धहस्त लेखक हैं।

बुन्देलखण्डी भाषा की मधुरता

बुन्देलखण्ड की भाषा कितनी मधुर है इसे वे ही महानुभाव भली प्रकार जान सकते हैं जिन्होंने भारतवर्ष की अन्यान्य भाषाओं को सुना और अध्ययन किया हो। अब तक व्रजभाषा ही को अपनी मधुरता के कारण सर्वोच्च स्थान दिया जाता है और यद्यपि इसमें मतभेद हो सकता है कि बुन्देलखण्ड की भाषा व्रजभाषा से भी मधुर है किन्तु यह तो सर्वमान्य ही होगा कि व्रजभाषा के पश्चात् मधुरता में बुन्देलखण्डी भाषा ही को स्थान प्राप्त है। कितने ही तो ऐसे शब्द हैं जो बुन्देलखण्डी भाषा में संस्कृत के थोड़े ही से रूपान्तर से व्यवहृत किए जाते हैं और अपठित जनता तक उनका नित्यप्रति व्यवहार करती है।

बुन्देलखण्डी भाषा के शब्दों के कोष का अभाव

बुन्देलखण्डी भाषा के शब्दों के एक साङ्गोपाङ्ग कोष का अभाव बहुत दिनों से खटक रहा है। यदि बुन्देलखण्डी भाषा के शब्दों का एक सुन्दर कोष तैयार करने की आयोजना की जावे और उस कोष की भूमिका में बुन्देलखण्डी भाषा के प्रचलित शब्दों का संस्कृत भाषा के शब्दों से निकास सादृश्य तथा अन्य भाषाओं के पर्य्यायवाची शब्दों पर प्रकाश डाला जावे तो अत्युत्तम हो। हर्ष है कि ओरछा-नरेश सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंहदेव बहादुर की भी ऐसी ही इच्छा है और यदि उनका थोड़ा-सा भी ध्यान इस ओर भली प्रकार गया तो इस अभाव की पूर्ति यथासम्भव शीघ्र ही हो जायगी। 'वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद' के कार्य्य-कर्त्ताओं को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। अन्य कार्यों के साथ ही साथ अन्वेषण और प्रकाशन विभाग की ओर भी विशेष रूप से यदि ध्यान दिया जावे तो बहुत कुछ ठोस कार्य हो जाने की सम्भावना है। 'परिषद्' के इस प्रकार के प्रयत्न से हिन्दी-हित-साधन के अतिरिक्त 'परिषद्' की विशेष ख्याति हो जायगी और आर्थिक-लाभ की भी भविष्य में इन विभागों से सम्भावना है। बुन्देल-खण्डी शब्दों के अलग से उदाहरण न लिखकर यहाँ पर थोड़े-से बुन्देलखण्ड के 'ग्राम्य गीत' लिखे जा रहे हैं उनमें शब्दों की कोमलता को पाठक स्वयम् ही देखें।

बुन्देलखण्ड के ग्राम्य-गीत

वैसे तो भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में ग्राम्य गीतों के गाये जाने की प्रथा है; किन्तु बुन्देलखण्ड में उनकी बहुत ही भरमार है। बुन्देलखण्ड के ग्रामों में ग्राम्य गीतों की बहुलता के कई कारण हैं।

परमात्मा ने बुन्देलखण्ड को अनोखी छटा प्रदान की है; ऊँची नीची विन्धयाचल की शृंखलाबद्ध पर्वत-मालाएँ, सघन वन कुंज, सर-सरिताएँ आदि ऐसे उपक्रम हैं जिनकी रमणीयता को देख कर मानव-हृदय अपने आप आनन्द-विभोर हो जाता है। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड का अतीत बड़ा ही गौरवमय रहा है। इसके अतीत को भली प्रकार देखने से यह निष्कर्ष निकलता है कि यहाँ की भूमि ही प्राकृतिक कवित्व गुण प्रदान करने की शक्ति रखती है। आदि कवि बाल्मीकजी, कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास, मित्र मिश्र, काशीनाथ मिश्र, तुलसी, केशव, बिहारी, पद्माकर आदि आदि संस्कृत और हिन्दी-साहित्य-संसार के श्रेष्ठतम कवियों को प्रसूत करने का सौभाग्य बुन्देलखण्ड ही को प्राप्त है। यह तो साहित्यिक और शिक्षित समुदाय के कवियों की बात हुई किन्तु गाँवों के रहने वाले व्यक्ति भी राछरों शैरों, दादरों और अन्य अनेक ग्राम्यगीतों में, जिनका कि अभी कोई इतिहास कोई गणना ही नहीं है, बुन्देलखण्ड के एक विशेष इतिहास को, अमूल्य साहित्य को सुरक्षित किए हुए हैं।

ग्राम्य गीतों की उपयोगिताओं पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है किन्तु वह यहाँ का विषय नहीं है सारांश उसका यही है कि पद-पद पर उनमें अनुप्रास, अलङ्कार और शब्दाडम्बर भले ही न हों किन्तु जिनके लिए उनकी रचना होती है वे उनसे भरपूर आनन्द और लाभ उठाते हैं। अब तक लोगों की यह धारणा थी कि प्रौढ़ और गूढ़ भावों का कविता में लाना केवल नागरिकों और शिक्षित समुदाय ही के हिस्से में है, गाँव के गँवार लोग भला उन्हें क्या जानें किन्तु हर्ष है कि अब शिक्षित समुदाय ही इसे स्वयम् स्वीकार करने के लिए अग्रसर हुआ है कि अनगढ़

ग्राम्य गीतों में भी बड़ी ही भाव-प्रौढ़ता, मधुरता, कौशलता और भावुकता भरी रहती है।

बुन्देलखण्ड के ग्राम्य गीतों का विशेष विवरण तो 'बुन्देल-वैभव' के एक भाग विशेष में देने का विचार है किन्तु यहाँ पर कुछ गीत उदाहरणार्थ लिख देना अनुपयुक्त न होगा।

कार्तिक के गीत

(१) नैक पठै,दो गिरधारी जू को मैया।
जे गिरधारी मोरे हिरदे बसत हैं,
सो उनईं के हात लगे मोरी गैया॥
इतनी सुनके जसोदा मुसक्यानी,
जाओ जाओ लाल लगा आओ गैया॥
कछु कारे कछु ओड़ें कमरिया,
उनई खों देख बिचक गई मोरी गैया॥
कछु दोवें कछु सेंट चलावें,
मुख पै दूध गिरे मोरी मैया॥
तू तो गुआलिन मद की माती,
अबे तो हमारो प्यारो बारो है कन्हैया॥

---

(१) नैक पठै दो = थोड़ी देर के लिए भेज दो। मोरे = मेरे। हिरदे = हृदय में। उनईं = उनही। हात = हाथों से। उनई......गैया = उनही को देख कर मेरी गाय छड़क गई है, चकचौंधिया गई है। दोवें = दुहते हैं। सेंट = दूध की धार जो कि थन से निकलती है। बारो = बच्चा है, छोटा ही है।

(२) एक बेर तुम हो जइयो मुरारी ।
दरशन खों तरसें वृज नारी ॥
बारे की खबर नइयां तुमखों, नन्द पिता जसुदा मातारी ॥
सोरा साठ आठ पटरानी, जिनमें की मैं हों गुबरारी ॥
गिरि गोवरधन नख पै धरकें, आन करौ ब्रज की रखवारी ॥

साखी की फाग

(तुकान्त)

(१) आग लगी दरयाब में, धुआँ न परगट होय ।
कि दिल हमसे जाने आपनों, जापर बीती होय ॥
काऊ की लगन कोऊ का जाने ॥

(२) उठो पिया अब भोर भये, चकई बोली ताल ।
मुख बिरियां फीकी पड़ी, सियरी मोतिनि माल ॥
पिया उठ जागो कमल विगसन लागे ॥

(३) कालिन्दी के तीर पै, ठाड़े हते दोऊ बीर ।
कान्ह बजाई बांसुरी, जमुना के थकित भये नीर ।
सुने से मोहन जू की बांसुरी ॥

---

(२) बारे = छुटपन की, लड़कपन की । नइयां = नहीं है। गुबरारी = गोबर पाथने वाली ।

साखी की फाग:—

(१) परगट = प्रगट ।

(२) भोर = सबेरा, प्रातःकाल । भये = हो गया । सियारी = ठण्डी बिगसन = खिलने लगे ।

(३) हते = थे ।

(४) तुपक लछारी बांधियो, जो बांहन बल होय।
कर में बोंडा राखियो, कऊँ सर बदले की होय।
सिपाही यार बैरी के दाव बचायें रहियो ।।

(५) मरबो भलो विदेश को, जाँ अपनो ना कोऊ।
पशु पंछी भोजन करें, नगर न रोवें कोऊ।
मन रे जीरा सरीसे पाहुने ।।

(६) कपटी मित्र न कीजिये, ज्यों आपू के फूल।
ऊपर लाल गुलाल है, नेचें विष के मूल।
यार रस की क्य. [illegible] बये रे ।।

(अतुकान्त)

(७) कजली बन में दों लगी, जर रये चंदन रूख।
उड़ जा पंछी देश खों, क्यों जरत हमारे संग।
पंछी फेर जनम हूहैं न रे ।।

(८) फल खाये ते प्रेम सों, रहे तुम्हारी छांय।
अब का उड़ हैं देश खों, हम जरें तुम्हारे साथ।
बिरछा वे पंछी जानो न रे ।।

---

(४) तुपक = तोप, बन्दूक। बाहँन = हाथों में। बल = ताक़त, शक्ति। लछारी = बड़ी।

बोंड़ा = तोड़ादार बन्दूक में बारूद में आग लगाने के लिए मूँज आदि की रस्सी बनाकर उसमें आग लगा लेते हैं उसे बोंड़ा कहते हैं।

(५) सरीसे = समान।

(६) नेचें = नीचे। आपू = अफीम।

(७) रूख = वृक्ष।

(८) बिरछा = वृक्ष।



(६) खेत तो बइये कपूर के, कसतूरी के बाग।
बांय तो गइये सपूत की, ओर निभाले जाय।
निभालो बारे की प्रीति बुढ़ापे नो ॥

(३) दादरा

(१) काँ जागे पिया रात, नैना कुसुम रँग हो गये।
जाओ रये जाँ रतियाँ, रये जाँ रतियाँ, उठ आये–
परभात ॥ नैना०

(२) नजरिया हमसे लड़ाओ मोरे राजा।
सो मोरे राजा अँगना में कुअला खुदइयो,
ढिमरिया हमको बनाओ मोरे राजा। नजरिया०
सो मोरे राजा अँगना में बगिया लगइयो,
मलिनियाँ हमको बनाओ मोरे राजा। नजरिया०
सो मोरे राजा अँगना में तबला बजइयो,
पतुरिया हमको बनाओ मोरे राजा। नजरिया०
सो मोरे राजा अँगना में पलका बिछइयो,
सो रनियाँ हमको बनाओ मोरे राजा। नजरिया०

---

(६) बइए = बोना चाहिए। बांय = बाँह। गइये = पकड़िए।
दादरा:—

(१) काँ = कहाँ पर। पिया = प्यारे, प्राणपति। नैना = आँखें। कुसुम = गहरा गुलाबी रंग। रये = रहे। रतियाँ = रात को।

(२) अँगना = आँगन। कुअला = कुआ। ढिमरिया = ढीमरन, धीवरन। पलका = पलङ्ग।



(४) ख्याल

*(१) प्यारे मोहना, फेर बजादो बीना।
अन्न बिना इक दुनियाँ तरसे, जल बिन तरसे मीना।
पुरुष बिना इक त्रिया तरसे, निस दिन बदन मलीना॥
भोर भये चिरई उठ बोली, सूरज से लवलीना।
हमने राम के कहा बिगारे, छोटे कन मोह दीना॥
प्यारे मोहना०

(५) दिनरी

†(१) अरे अरे मनुआँ, मनवा ओ रे! सब से करले चिनार।
काल कलां पंछी रम जैहै, तेरे ऊपर जम है नइ घांस।
खाले, पीले, देले, लेले, और करले भोग विलास।
सब सें हिल ले, मिल ले, और करले तीरथ पिराग।
मटिया, कुमरा ना लेहैं, तेरी पूंछ है न कोऊ बात।

(६) स्वांग

‡(१) लगा आई गिरधारी सें नेह
एक दिना गउअन में गये ते, भारी बरसो मेह।
अपनी कमरिया उन्हें उढ़ा दई, तासें लगौ सनेह॥ लगा०
तुम्हारी कमरिया लाख टका की, थर थर कांपे देह।
मोरी कमरिया पाँच टका की, सबरी ऊबे देह॥ लगा०
सात सखीं जुर द्वारे आईं, भीगे सुन्दर देह।
पाँच दिना फागुन के रै गये, फिर अपनी ले लेय॥ लगा०

---

*(१) चिरई = चिड़िया।

†(१) चिनार = पहिचान। कालकलां = कुछ समय में। पिराग = प्रयाग। मटिया = मिट्टी। कुमरा = कुम्हार।

‡(१) भारी = बहुत, अधिक। कमरिया = कम्मल।

(७) मंगादा

सावन महिना नीको लगे गेंउड़े भई हरयाल ।
सावन में भुंजरियाँ बैदियो भादों में दियो सिराय ॥
ऐसो है कोऊ भैया धरमी बहिनन को लिया है बुलाय ।
आसों के साहुना घर के करौ आगे के देहैं खिलाय ॥
सोने की नादें दूध भरी सो भुजरिया लेव सिराय ।
कै जेहैं तला की पार पै कै जेहैं भुजरियां सूक ॥
धरीं भुजरियां मानिक चौक में बीरा धरीं तुलाय ।
कैसी बहिन हटै परीं बर बट लेत पिरान ॥
आसों के सहुना जूझ के हैं आगे के दें हैं कराय ।
नयनिया बुलाओरी राउर में नगर नगर बुलौआ दुआ ओरी ॥
दौरी दौरी नाइन फिरें घर घर फिरें नकीब ।
कहाँ धरी मांथे की बिंदिया कहाँ धरौ सोरो शृँगार ॥
डबियन धरी मांथे की बिंदिया बकसन धरे सोरो शृँगार ।
कहाँ धरी है डार पुटरिया कहां धरी है झूमा सारी ॥
कहाँ धरी है करहां कटरिया कहाँ धरी गेंड़ा की ढाल ।
कौनन ठगी करहां कटरिया घुल्लन टँगी गेंड़ा की ढाल ॥
कहाँ धरौ सुरसी को बागौ कहाँ निरवोला पाग ।
जामधाने में धरौ सुरसी को बागौ ऊपर धरी निर्वोला पाग ॥
झूला झूलती भैया को लाओ बुलाय छप्पन रसोई होगई भोजन
देव खिलाय ।

मंगादा = ये गीत श्रावण मास में गाये जाते हैं। गेंउड़े = गाँव के बाहर समीप ही। आसों = इस वर्ष। साहुना = सावन, श्रावण। बरबट = अपने आप। पिरान = प्राण। घुल्लन = खूँटियों से।



दौरी तैरी कचैरीं भरीं भारी भरे दरबार ।
सौने थारन भोजन परोसियो रूपे के गडुअन नीर ॥
एक कौर दैलयो दूजौ दियौ सरकाय, कैतो लाल माछी कूछी गिरी
कै टूटे सर के बाल ।
नातो माता माछी कूछी गिरी, ना टूटे सर के बाल ॥
कुंवर कलेवा वे करें जो क्वारी ब्याहुन जाय ।
हम कलेऊ क्या करें हम रण लड़वे को जाय ॥
रचाये पांव बिंदुलिया के पूँछ रगी सरबोर ।
बारन बारन मोती गोये किश बारन हीरालाल ॥
बिटियन के डोला सजे बहुअन की चौंडेल ।
दरवाजिन हो डोला चले खिरकिन हो चली चौंडेल ॥
लहर लहर डोला चले पचरंग चली चौंडेल ।
जेठी पकर गई ताजमों लौरी पकर गई घोड़ा की बाग ॥
जेठी को पठैयो माय के लौरी को तुम्हें भार ।
धरी भुजरिया कूं तलाकी पार पर बिटिया आन भुजरिया सिराय॥
भारी फौजे आन गिरी बैंने भगने होय तो भगलियो भगतन
लियो पहार ।
हाथ काहू को पकराईयो नहीं नहिं लग जैहै कुल को दाग ॥
तोपन के कुदुआ लगे मूंडन के लगे पहार ।
बसती लड़े इड़ियन छिड़ियन मंगादा लड़ें मैदान ॥
मारत मारत भुज्जैं रै गईं ललकारत रह गई भांस ।

कचैरीं = कचहरी । रूपे = चाँदी । माछी कूछी = मक्खी आदि । बिटियन = लड़कियों के । चौंडेल = पर्देदार डोला । लौरी = लहुरी, छोटी । मायके = माता पिता के घर । सिराय = पानी में भुँजरियाँ डालने को सिराना कहते हैं । भगने = भागना हो तो । भुज्जैं = हाथ । रैगईं = थक गये । भांस = आवाज़, बोली ।

(८) अकती

नगर अजुध्या की गैल में एक महुआ एक आम।
जा तन ठाड़े तपसी दो जने बारी सीता के चलाउनहार॥
आगे से घोड़ा पै लछमन लाड़ले रथ पै श्रीराम।
सीता गई पानी उत गैल मिले पाहुने॥
हलत कंपत घर आई वारी भौजी ने पलंग दये लटकाय।
कै मोरी सीता माथो धमकौ कै सिर आई ताप कै काऊ सखी ने बोले बोल॥
न मोरी भौजी माथौ धमकौ न सिर आई ताप।
आये मोरी भौजी दो जने राजा जनक जू के पाहुने सीता के चलाउनहार॥
आये पाहुने फिर जैहैं लछमन रैहैं दिना चार।
न मोरे सीता मने बिसूरियो न करो जिया किरोध।
टेरो जनक जू के नाऊआ वारे लछमन डेरा ढुआओ॥
टेरो जनक जू के मैतरा वारे लछमन डेरा झराओ।
टेरो जनक जू के ढीमरा वारे लछमन झाड़ी भराओ॥
टेरो जनक जू के बाढ़ई वारे लछमन पलंग बुनाओ।
सोरा सुपेती लरम गदेला वारे लछमन डेरा पहुँचाओ॥
पाचा पान बीरा लगवाओ लछमन डेरा पहुँचाओ।
ऊँचे नेचे महल झराओ जाँ माछी मकरी न होय।

गैल = मार्ग। लटकाय = बिछा दिए। माथो धमको = सिर में दर्द हो गया। ताप = बुखार। किरोध = क्रोध, गुस्सा। टेरो = बुलाओ। नाऊआ = नाई। मैतरा = महतर। सुपेती = पल्ली, रजाई। गदेला = गद्दा।

ताती सी पुरिया पकाओ लछमन डेरा पहुँचाओ।
धुवादार हरदें सरद बनाई तुलसा को भात थूल मथूलौ बास
चले जैसे देउल मोरो॥
दैया मारे कड़ी बिच कीनी मेंथिन दये बगार।
बरलाहार कौ चक्क विहाव दे लैंदई बोरे परसे मगौरा॥
पापर सेंकौ चक्क विहाव दौ तौल चढ़े कछु रतिया कौ भारौ।
फुलका पये परसे दो दो जोटा करे कचैया तेल अकोरे लै संमर
कै बखेड़े॥
निबुआ पौल धरौ ढिक सूदौ अब भई जेउनहार सब पूरी।
टेरौ जनक जू कौ नौआ भोजन की लछमन भई तैयारी॥
सोवत होय जगाय लीजौ भूले होंय खबर कर लीजौ।
सुरहिन गौ कौ गोबर मँगाओ दुरधर आंगन लिपाओ॥
मुतियन चौक पुरायो।
जनक जू कहें सोने कलस धराओ चुरुअन चरन पखारौ॥
सौने के थार परोसौ जसोदा रूपे के बेलन घी परस लोटा सापरी
अचरन डोरी है बाग।
अचरन कौ गुन मानियो मेरी सीता के तुम ही आधार॥
तुम्हारे सीता अधिक प्यारी हमारे प्रान आधार।
तुम्हारे तो पीसें सीता पीसनो हमारे पिड़ियन माज॥
तुम्हारे तो कर हैं सीता गोबरी हमारे पलकन माज।
तुम्हारे तो भर हैं सीता पानिया हमारे सकियन माज॥

लरम = मुलायम। फुलका पये = अच्छी रोटी बनाई। निबुआ = नीबू। पौल = काटकर। सूदौ = सीधा। पिड़ियन माज = पीढ़ी पर बैठने ही के लिए। पलकन माज = पलङ्ग पर पड़े रहने के लिए।

तुम्हारे तो जेबैं सीता कोदरी हमारे जेबैं सीता मुउछर भात ।
तुम्हारे तो जेबैं सीता माडोली हमारे खोहन दूध ॥
टेरो जनक जू के नौआ नगर बुलौआ देव ।
टेरो जनक जू की नायने सीता को स्नान कराये ॥
बार-बार मोती गोदये गुरू भर दई माँग ।
चलो सखी दो चार राम लछमन लिवाये जात ॥
भेंटी भर अकवाई अब की बिछुरी सीता कब मिलौ ।
डुलियन सीता बिसूरियो बाबुल लगाये न अमोला माई न जाये वीर ॥
को मोहे देवा दिखाईया डुलियन सीता बिसूरियो ।
बाबुल लगाये अमोला माई जाये वीर देश दिखाईयो ॥
सीता पौंची सासरे के देश सकियन लई अगवान ।
वर तन पौंची सीता देवर ने लई अगवान ॥
नाम लै भौजी नाम लै अपने पति कौ ।
सब सखियाँ नाम लै गईं तुम लो भौजी नाम ॥
नाम तौ कहिये लछमन देवरा नदी नारे डोंड़ा तला तेरी पार ।
अब की तो बिटियाँ कलजुग की कहियो सो लेत पतिं कौ नाम ॥
हम सीता सतयुग की कहिये सो न लेंहैं पुरुष के नाम ।

ईश्वरी कृत फागें

अब 'ईश्वरी या ईसुरी' की कुछ फागों के भी उदाहरण, जिनका कि बुन्देलखण्ड में बहुत प्रचार है, लिख देना उचित होगा । ये महाशयजी (श्री०ईश्वरजी) छतरपुर के समीप बगौरा नामक ग्राम के रहने वाले थे । आपके सम्बन्ध में अनेकानेक किम्बदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं,

गोदये = पिरो दिये । अकवाई = दोनों हाथों से पकड़ कर हृदय से लगा कर भेंट की । बाबुल = पिता ।

आप प्रायः प्रत्येक रस में और तत्काल ही फाग बनाकर कह देते थे। आपके आशुकवित्व को प्रमाणित करने वाली अनेक रचनाएँ प्रचलित हैं। आपके जन्म-संवत् आदि का तो ठीक ठीक पता मुझे नहीं चल सका है किन्तु यह निश्चय है कि आप सं० १९२० से १९७५ वि० तक विद्यमान थे और इसी समय के अन्तर्गत आपने फागों की रचना की थी। आप यद्यपि अधिक पढ़े लिखे न थे किन्तु आपकी रचनाओं में अनुप्रास, अलङ्कार और शब्दों की गठन को देखकर हृदय अपूर्व आनन्द में निमग्न हो जाता है। पाठक निम्नलिखित पद्यों को देखें और गम्भीरता-पूर्वक विचार करने की कृपा करें।

मोय बल रात राधिका जी को;
करें आसरो कीको।
दीनदयाल दीन-दुख देखत,
जिनको सुख है नीको;
पैले पार पातकी कर दये,
मोहन सो पति जी को।
कैसो लगत खात सब कोऊ,
स्वाद कात ना घी को;
ईश्वर कछू काम को जानों
कदमन के ढिग झूँको॥

मोय = मुझे। रात = रहता है। आसरो = भरोसा। कीको = किसका। नीको = अच्छा। पैले पार = पहिले पार, उस पार। कर दये = कर दिये। सो = समान, सरीखा। जीको = जिसका। कैसो लगत = कैसा जान पड़ता है। कात = कहता। कछू = कुछ। कदमन = चरणों। ढिग = समीप। झूँको = झुका हुआ है।

हम पै राधा की सिवकाई;
ऐसी काँ बनयाई।
उन खाँ धुन से ध्यान लगाकें,
एकहु दिना न ध्याई।
ना कबहूँ हम करी खुशामद,
चरण कमल चित लाई।
म्रन कर पाप करत रये होगव,
काँ को पुन्य सहाई।
परत लाड़ली 'ईश्वर' जासें,
सिर पै गाज बचाई।

× × × ×

मन्दोदरी रावण से कहती है:—

तुमने मोरी कही न मानी,
सीता ल्याये बिरानी।
जिनकी जनक सुता रानी है,
वे हरि अन्तरध्यानी।
हेम कंगूर धूर में मिलजैं,
लङ्का की रजधानी।

पै = पर। काँ बनियाई = कहाँ बन पड़ी है। उनखाँ = उनको। धुन = लगन। कें = कर। करी खुशामद = सेवा की। रये = रहे। होगव = हो गया। काँ को = कहाँ का। जासें = जिससे। गाज = बिजली।

× × × ×

मोरी = मेरी। कही = कहना। ल्याये = ले आये। बिरानी = दूसरे की। हेम कंगूर = सोने के कंगूरे। धूर = धूलि, मिट्टी। मिलजैं = मिल जावेंगे।

लै कें मिलौ सिखावत जेऊ,
मन्दोदरी स्यानी।
'ईश्वर' आप हात हरयानी,
आनी मौत निशानी।

× × × ×

को रओ रावन के पन देवा;
बिना किए हरि सेवा।
करनासिंध करौ कुलभरको,
एक नाव को खेवा।
काल फंद अवधेस छुड़ाये,
जै बोलत सब देवा।
बांकन लगे काम महलन पर,
भीतर बसत परेवा।
'ईश्वर' नाश मिटावत, पावत,
पाप करे को मेवा।

× × × ×

विरहिणी नायका को पावस का आना अच्छा मालूम नहीं हुआ अतः आप उससे कहलाते हैं:—

हम पै बैरिन बरसा आई,
हमें, बचा लेव माई।

लैकें = लेकर। जेऊ = यही। स्यानी = चतुर। आप हात = अपने ही हाथ से। आनी = आई है। को रओ = कौन रहा। पन देवा = पानी देने वाला। करनासिंधु = करुणासिंधु। बांकन लगे = बोलने लगे। परेवा = कबूतर।

× × × ×



चढ़के अटा घटा ना देखें,
पटा देव अगनाई ।
बारादरी दौरियन में हो,
पवन न जावे पाई ।
जे द्रुम कटा छटा फुलबगियाँ,
हटा देव हरयाई ।
पिय जस गाय सुनाव न 'ईसुर'
जो जिय चाव भलाई ।

× × × ×

गोरी कठिन होत हैं कारे;
जितने ई रंग वारे।
कारे रंग के काट खात जब,
जहिर न जात उतारे।
कारे रंग के भँवर होत हैं,
कलियन पै गुँजारे।
कारे रंग के काग पखऊवा,
पटियन जात उनारे।
ककरिजिया को ओढ़ ईसुरी,
खकल करेजे डारे।

अटा = छत । अगनाई = आँगन । बारादरी = बारहदरी, बारह । दौरियन = छोटे दरवाजों में, खिड़कियों में हो । चाव = चाहो ।

× × × ×

ई = इस । कारे .... खात जब = काले रंग के अर्थात् काला सांप जब काट खाता है। जहिर = विष । पखउवा = पंख, डैने । पटियन = बालों की पटियों से । उनारे = उपमा दी जाती है । ककरिजिया = कांकरेजी रंग में रंगी हुई धोती आदि । खकल = खोखला कर डालना, मसक डालना, धक्का पहुँचाना । करेजे = कलेजा ।

जौ लों गये न गंग किनारें;
कर लो पाप बहारें।
मारत धार पार ना पैहौ,
पकरत फिरौ करारें।
नदिया बीच कछारन मईयां,
ऐसी खेव पछारें।
गङ्ग धार में तरें ईसुरी,
अगन भार में जारें।

आप चतुर्भुज लम्बरदार नामक व्यक्ति के कारंदा थे। किसी समय किसी से आपका झगड़ा हो गया होगा; आप उसके समझौते के लिए देखिए कैसी युक्तिपूर्ण सलाह देते हैं।

तन तन दोऊ जनें गम खायें;
करौ फैसला चायें।
नाँय बगौरा को मेड़ो है, बड़े गाँव को माँयें।
माँझ पारिया पै झगड़ा है, तू दा बिना बनायें॥
कानीगोजू कान सें लगकें, सबखाँ मंत्र बतायें।
लयें फिरत हैं खरा खतौनी, लाला जू कखयायें॥

जौलों = जब तक। करारें = किनारे। मईयां = में। खेव = खाओगे। पछारें = पछाड़ें, ठोकरें। तरें = तैरें, उद्धार पावें। अगन = अग्नि। झार = लपट, अग्नि की ज्वाल में। जारें = जलादें।

× × × ×

तन तन = थोड़ी थोड़ी। दोऊ जनें = दोनों आदमी। गम खायें = सब्र करें, कमी करें। करौ फैसला चायें = निपटारा करना चाहें तो। नाँय = इस ओर। मेड़ो = हद्द। माँयें = उस ओर। माँझ पारिया = मध्य की, बीच की। कानीगोजू = कानूनगोजी। सबखाँ = सबको। बतायें = बतलाते हैं। लयें फिरत = लिये फिरते हैं। लाला जू = पटवारीजी। कखयायें = काँख में दाबे।

हो गये हैं हैरान विचारे, कालौं कियै बतायें ।
लम्बरदार चतुरभुज जू के, हम कारंदा आयें ॥
अपनी लाँच खायबे कों वे, नाँय की माँय मिलायें ।
गद्दी गाड़े ढँड़कत नैयां, ओंगन बिना लगायें ॥
सारो दारमदार को झगड़ा, किलेदार पर चायें ।
दुबे रवूदे, मङ्गल टुड़या, झल्लाखाँ दबकायें ॥
राव साब की मिहरबानगी, चाकर नहीं छुड़ायें ।
बेना धुनका बूड़ा भिनका, जिये बकील बनायें ॥
हाथ भरे को कागज लिखकें, अरजंटी कों जायें ।
पन्द्रा रोज भये हैं 'ईसुर', डिपुटी साहब आयें ॥

× × × ×

बादल मदन-भूप-दल दावें;
बिरहिन के घर आवें ।
जिनके संग नकीब कोकला, ललित अबाज लगावें ।
चातुर चतुर अलापत डांढ़ी, पिया पिया जस गावें ॥
बूँदें नोईं तीर से लागें, रात दिना बरसावें ।
परदेसी की नार ईसुरी, जीके जीय जरावें ॥

कालौं कहाँ तक । कियै = किसको । कारंदा आयें = कामदार हैं । लाँच = रिशवत । खायबे कों = खाने के लिए । नाँय की माँय = इधर की उधर । मिलायें = जोड़ते हैं । गद्दी ········ लगायें = गाड़ी बिना ओंगन लगाये नहीं चलती है । सारो = सब । खाँ = कहँ, को । दबकायें = भयभीत किए हैं । जिये = जिसको । अरजंटी = पोलिटिकिल एजेण्ट । भये हैं = हुए हैं । आयें = आये हैं ।

× × × ×

अबाज = बिरुदावली, प्रशंसात्मक शब्दावली । बूँदें ····· लागें = मेघ मे की बूँदें नहीं हैं, ये तो तीर की तरह जान पड़ती हैं । जीके = जिसके । जीय = मन, हृदय ।

फिरतन परे पाँय में फोरा;
संग न छोड़ों तोरा।
घर घर अलख जगावत,जाकें, टँगो कँदा पै झोरा।
मारौ मारौ इत उत जावे, गलियन कैसो रोरा॥
नई रव माँस रकत देही में, भये सूख कें डोरा।
कसकत नहीं ईसुरी तनकऊ, निठुर यार है मोरा॥

× × × ×

जब से भई प्रीत की पीरा;
खुशी नहीं जौ जीरा।
कूरा माटी भग्रो फिरत है, इते उते मन हीरा।
कमती आगई रकत मास की, बहो द्रगन सें नीरा॥
फूँकत जात बिरह की आगी, सूकत जात सरीरा।
ओई नीम में मानत ईसुर, ओई नीम को कीरा॥

× × × ×

फिरतन = फिरते फिरते। पड़े = पड़गये। फोरा = फोड़े, छाले, फफोले। जाकें = जाकर। टँगो = टँगा हुआ है। कँढ़ा = कँधा। रोरा = रोड़ा, मिट्टी, ईंट और पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े। नईं रव = नहीं रहा। रकत = रक्त, खून। डोरा = धागा के समान; बिल्कुल दुबले पतले। कसकत = द्रवित नहीं करती, पसीजते नहीं। तनकऊ = तनिक ही थोड़ा भी। निठुर = दयाहीन। यार = मित्र। मोरा = मेरा।

× × × ×

पीरा = पीड़ा, दर्द। खुशी = प्रसन्न। जौ = यह। जीरा = जिय। कूरा = कूड़ा। माटी = मिट्टी। भग्रो = हुआ। इते उते = यहाँ वहाँ। कमती······की = रक्त और माँस कम होगया यानी दुर्बल हो गए। सूकत जात = सूखता जाता है। ओई = उसी। कीरा = कीड़ा।

× × × ×



मानस बड़े भाग से होवै;
रजऊ छोड़ देव लोभै।
मिलकें चाल चलौ दुनियाँ में, सबसे राख घरोबै।
जिंदगानी को कौन भरोसो, जुवन जात रव रोबै॥
बड़े तला में सपरत ईसुर, नंगो कहा निचोबै।
× × × ×
अपने मन मानुष के लाने,
सुगर जौहरी चाने।
नर तन रतन खान से उपजौ, चढ़ो प्रेम खरसाने।
बेंचो ओई दुकाने जैहै, जो कीमत पहिचाने॥
'ईश्वर' केऊ जगह घर हारे, कोऊ धरत ना गाने।
× × × ×
बखरी रईयत हैं भारे की;
दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी मांटी की;
छाई फूस चारे की,

रजऊ = नाम विशेष। घरोबै = घर कैसा प्रेम, प्रेम व्यवहार। जुवन = जवानी। सपरत = स्नान करता है। नंगो = नग्न, निर्धन। कहा = क्या।

× × × ×

सुगर = सुघर, चतुर। चाने = चाहिए। खरसाने = मरसान, जिससे शान या धार रक्खी जाती है। केऊ = कितने ही। गाने = गहने।

× × × ×

बखरी = घर। रईयत = रहियत, रहते हैं। भारे की = किराये की। दई……की = प्यारे पिया की दी हुई है। भींत = दीवाल। मांटी = मिट्टी।

बे बंदेज बड़ी बेबाड़ा,
जेई में दस द्वारे की।
किवार किवरिया एकौ नइयां,
बिना कुची तारे की;
'ईश्वर' चाये निकारें जिदनां,
हमें कौन उवारे की।

× ×

मोरे मन की हरन मुनैयाँ;
आज दिखानी नैयाँ।
कै कऊँ हुयै लाल के सङ्गे,
पकरी पिंजरा मईयाँ;
पत्तन पत्तन ढूँड़ फिरे हैं,
बैठी कौन डरैयाँ।
कात 'ईश्वरी इनके लाने,
टोरी सरग तरैयाँ।

× × × ×

बे बंदेज=बिना बन्दोबस्त की। बेबाड़ा=बुरी दशा में। जेई में=तिस पर। एकौ नईयां=एक भी नहीं है। कुची तारे=कुँजी ताला। चाये=चाहे। निकारें=निकाल दें। जिदनां=जिस दिन भी। उवारे की=उबारे की, फायदे की सुभीते की। अर्थात् परमात्मा का दिया हुआ यह शरीर रूपी घर जो कि दस द्वार का है उसी का आप वर्णन करते हैं।

× ×

मुनैयाँ=पक्षी विशेष। दिखानी नैयाँ=दिखलाई नहीं दी। कै कऊँ=या तो कहीं। मईयाँ=में। डरैयाँ=डालों पर। कात=कहते हैं। लाने=लिए। टोरी.....तरैयाँ=आसमान के तारे तोड़े हैं अर्थात् बड़ा परिश्रम किया है।

दोई नैनन की तरवारैं, प्यारी फिरैं उबारैं।
अलेमान गुजरात सिरोही, सुलेमान झकमारैं।
ऐंचबाड़ म्यान घूँघट की, दै काजल की धारैं॥
'ईसुर' श्याम बरकते रहियो, इँधियारे उजियारैं।

× ×

पटियाँ कौन सुघर ने पारीं।
लगी देखतन प्यारीं॥
रंचक घटी बढ़ी हैं नाहीं, सांसे कैसी ढारीं।
तन रये आन शीस के ऊपर, श्याम घटा सी कारीं।
ईसुर प्रान खान जे पटियाँ, जब से तकीं उघारीं॥

इत्यादि, आपकी इसी प्रकार की प्रायः एक सहस्त्र फागों का संग्रह मेरे पास प्रस्तुत है। उनके भी सम्पादन और प्रकाशन की अयोजना की जा रही है।

ग्रन्थ-निर्माण की भावना और सुयोग

बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवियों के सम्बन्ध में खोज करने की मेरी धारणा सर्व प्रथम सं० १९६८ वि० के लगभग जागृत हुई थी, और तब ही से मैंने इस सम्बन्ध में प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया था, जब भी किसी प्राचीन कवि की कविता या उसके सम्बन्ध की ज्ञातव्य बातें मालूम हो जातीं तों मैं उन्हें

दोई = दोनों। उबारैं = मारने के लिए हुए। बरकते = किनारा करते रहना, बचे रहना। इँधियारे उजियारे = अँधेरे उजेले में।

× ×

पटियाँ कौन सुघर ने पारीं = किस चतुर ने बालों की पटियों को पारा है अर्थात् तेरा सिर बाँधा है, बाल निकाले हैं। लगी देखतन प्यारीं = देखने में अच्छी मालूम हुई हैं। सांसे = सांसा-ढालने का यंत्र। ढारीं = ढाली गईं। रये = रहे। आन = आकर। तकीं = देखीं। उघारीं = बिना ढकी हुईं।

प्रायः लिख लिया करता था, यही क्रम बहुत समय तक चला, सं० १९८० वि० के लगभग इस सम्बन्ध में लेखादि भी लिखे। पश्चात् जब सं० १९८४ वि० में कुछ कवियों की कविताओं, और जीवन चरित्रादि के विषय पर एक संग्रह-ग्रन्थ 'सुकवि-सरोज' (प्रथम-भाग) के नाम से कालपी से प्रकाशित हुआ तब तो इस ओर और भी विशेष रूप से ध्यान देने की इच्छा हुई। अतः 'सुकवि' 'विशाल-भारत' 'वीणा' और 'भारत' आदि पत्रों में इस सम्बन्ध में समय समय पर लेखादि छपते रहे। सं० १९८८ वि० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग का २१वाँ सम्मेलन झाँसी में हुआ। इस सम्मेलन में 'बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवि' शीर्षक एक निबन्ध मैंने भी पढ़ा जिसे उपस्थित जनता ने खूब ही पसन्द किया और कतिपय मित्रों ने तो उसे शीघ्र ही पुस्तकाकार छपा देने के लिए मुझसे आग्रह किया। मित्रों का इस प्रकार का प्रोत्साहन पाकर मैंने झाँसी से लौट कर अपने संचित साहित्य को उठाया, पत्रों में सूचना निकाली और अपने इष्ट-मित्रों तथा प्रान्त के उत्साही कवियों से सहयोग देने के लिए प्रार्थना की। जब कुछ भाग इसका प्रस्तुत हो चुका तो रायबहादुर रावराजा श्री पं० श्यामबिहारीजी मिश्र एम० ए० (मिश्र बन्धुओं में से एक) (तब दीवान ओरछा राज्य) को मैंने उसे दिखलाया और अपनी यह अभिलाषा प्रकट की, कि यह ग्रन्थ बुन्देलखण्ड के कवियों के सम्बन्ध में है, ओरछा राज्य, कवियों को आश्रय देने में सर्वदा अग्रगण्य रहा है, अतः यदि वर्तमान ओरछा नरेश ही को यह ग्रन्थ समर्पित किया जा सके तो अत्युत्तम हो। इसमें श्रद्धेय मिश्रजी भी मुझ से पूर्णतया सहमत हो गए और पश्चात् श्री सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंह देव बहादुर ओरछा-नरेश ने

भी सहृदयतापूर्वक सहर्ष इस ग्रन्थ का समर्पण स्वीकार कर लेने की कृपा की और इस प्रकार मेरी अधिक वर्षों की इच्छा की पूर्ति अब हो रही है।

ग्रन्थ का नाम

सर्व प्रथम सूचना समाचार-पत्रों में जब प्रकाशित हुई थी तब इस ग्रन्थ का 'बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवि' यह नाम रखने का विचार था किन्तु पश्चात् आदरणीय पं० श्यामबिहारीजी मिश्र एम० ए० के परामर्श से इसका नाम 'बुन्देल-वैभव' रक्खा गया। कवि ही प्रत्येक देश के वैभव को बढ़ाया करते हैं, देश का जब वैभव बढ़ता है तो कवियों को भी बड़प्पन प्राप्त होता है अतः बुन्देल-खण्ड प्रान्त के कवियों के महत्व के साथ ही साथ बुन्देलखण्ड का महत्व भी इससे जाना जायगा। इस प्रकार दोनों ही भावों का बोध इस नाम से हो सकता है।

ग्रन्थ में कवियों के नामोल्लेख तथा जन्म और कविता काल आदि का क्रम और आधार

इस ग्रंथ में कवियों के नामोल्लेख उनके प्रचलित नामों ही के अनुसार किये गये हैं यद्यपि मैंने अपने 'सुकवि-सरोज' नामक ग्रंथ में 'श्री' 'पं०' आदि आदर प्रदर्शक शब्द जोड़ दिये थे, वहाँ वैसा करना सम्भव था, किन्तु इस ग्रन्थ में इस प्रकार की उपाधियाँ जोड़ने से गड़बड़ी पड़ने और भ्रम हो जाने की आशंका है अस्तु कवियों के वही नाम जो कि जन साधारण में प्रचलित हैं लिखे गये हैं। प्राचीन काल के कवियों का वर्णन करते हुए जब वर्तमान काल के कवियों के वर्णन को मैंने प्रारम्भ किया तो पहिले बिना उपाधि आदि के नाम लिखते हुए कुछ संकोच सा होने लगा किन्तु जब प्रारम्भ से बिना उपाधि आदि के

नाम लिखे जा चुके थे तो वही क्रम विवश हो वर्तमान कवियों के लिये भी रखना पड़ा। जहाँ तक सम्भव हुआ है यथेष्ट अनुसन्धान करके कवियों के जन्म संवत् आदि ठीक ही ठीक लिखे गए हैं, जहाँ पर उन्हें अनुमान से लिखा है वहाँ पर कवि की रचनाओं तथा अन्य सब ही बातों पर भली प्रकार विचार करने के प्रश्चात् ही कविता-काल लिखा गया है और कविताकाल ही के अनुसार कवियों का क्रम रक्खा गया है योग्यता आदि को देख कर नहीं। यद्यपि साहित्य की सुसंस्कृति में योग्यता को अधिक महत्व दिया जाता है फिर भी योग्यता के अनुसार कवियों का क्रम रखने में कितनी ही झंझटों का सामना करना पड़ता और फिर भी वह ढंग निर्विवादास्पद नहीं हो सकता था। कविता-काल के अनुसार क्रम रखना और भी अनेक कारणों से मुझे उपयुक्त जान पड़ा।

इस ग्रन्थ का अधिकांश भाग प्राचीन हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थों, प्रकाशित ग्रन्थों तथा स्वयं कवियों ही की रचनाओं के आधार पर लिखा गया है किन्तु कुछ कुछ भाग ऐसा भी है जो कि मित्रों तथा अन्य महानुभावों द्वारा भेजी गई सूचनाओं और अनेक प्रचलित किंबदन्तियों के आधार पर है; उनकी यथार्थता पर यद्यपि लिखने के पूर्व यथेष्ट विचार कर लिया गया है फिर भी यदि कोई भूल-चूक हो तो दयाकर पाठक मुझे सूचित करने की कृपा करें।

गोस्वामी तुलसीदासजी के सम्बन्ध में सम्भव है किन्हीं महानुभावों को कोई आपत्ति हो किन्तु मैं यहाँ स्पष्ट रूप से पाठकों से यह निवेदन कर देना उचित समझता हूँ कि मुझे जितनी भी प्रमाणिक बातें आपके सम्बन्ध में मिल

सकी हैं मैंने लिख दी हैं। यह तो प्रायः सब ही मानते हैं कि वे अपने जीवन के अधिकांश काल में राजापुर (बुन्देलखण्ड) ही में रहे अतः 'बुन्देल-वैभव' में उनके चरित्रादि को सम्मिलित करना नितान्त आवश्यक था। अब रही उनके ब्राह्मणत्व की बात सो उस पर यदि साहित्यिक महानुभावों ने समुचित प्रकाश डालने की कृपा की और अन्वेषण द्वारा मेरे कथन के प्रतिकूल यदि कोई बात निश्चित रूप से सिद्ध हो जायगी तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा। जब तक कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता है तब तक मुझे अपना ही कथन ठीक जान पड़ता है।

इस ग्रन्थ के कवियों की संख्या

इस ग्रन्थ में प्रायः २००० कवियों के सम्बन्ध में लिखा गया है। यद्यपि मैंने भरपूर प्रयत्न किया है और करता जा रहा हूँ कि बुन्देलखण्ड का कोई भी कवि इस में स्थान पाने से रह न जाय फिर भी इस ग्रन्थ में उल्लिखित कवियों के अतिरिक्त और भी कितने ही कवि ऐसे होंगे जिनका कि मुझे पता नहीं चल सका है क्योंकि कितने ही कवि संसार की कुटिल दृष्टि से अपने को दूर रख कर ही लिखा करते हैं यद्यपि ऐसे भी कतिपय कवियों को खोज कर उनके सम्बन्ध में मैंने लिखा है फिर भी जो महानुभाव इसमें सम्मिलित न हो सके हों दयाकर मुझे सूचित करें, वे यह न समझें कि जान-बूझकर उनकी उपेक्षा की गई है किन्तु उसे मेरी अज्ञानता का कारण समझें। इतना ही नहीं यदि किसी स्थान के प्राचीन और अर्वाचीन कवियों के सम्बन्ध में किसी सज्जन को पता चले तो वे उनके सम्बन्ध में भी मुझे लिख भेजने की कृपा करें।

इस ग्रन्थ में वर्णित कवियों को मैंने निम्नलिखित विभागों में विभाजित किया है।

कवियों का काल-विभाग

(१) कवीन्द्र-केशव काल।
(२) लाल-काल।
(३) पद्माकर-काल।
(४) मैथिलीशरण गुप्त-काल।

कवियों की श्रेणी-विभाग का मैं अधिक पक्षपाती नहीं हूँ। मैं तो सब ही कवियों को अपने अपने स्थान पर अपनी अपनी अलौकिक प्रतिभा प्रस्फुटित करता हुआ पाता हूँ। क्योंकि इस ग्रन्थ में दो तुकों की चूल बैठा लेने वाला ही कवि नहीं माना गया है इसमें तो वे ही कवि सम्मिलित किए गए हैं जिन्होंने कि भाषा भारती का भण्डार भरकर अपने कवि नाम को सार्थक किया है। कवियों की विचार-धारा स्वतन्त्र हुआ करती है किसी ने किसी विषय पर लिखा है तो किसी ने किसी अन्य विषय पर, किसी कवि में कुछ विशेषताएँ हैं तो किसी कवि में कुछ और। अतः उनका श्रेणी-विभाग करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है और अपने को मैं उसके योग्य नहीं समझता।

अन्य ग्रन्थों का साहाय्य

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है इस ग्रन्थ के प्रस्तुत करने में मुझे १५, २० वर्ष परिश्रम करना पड़ा है और कितने ही ग्रन्थों तथा मासिकपत्र पत्रिकाओं को देखना पड़ा है। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में से अभीष्ट साहित्य नोट बुक में लिख लिया जाता रहा है। अब यद्यपि उन सब का उल्लेख करना सम्भव नहीं है किन्तु मैं उन सब लेखकों का हृदय से उपकार मानता हूँ जिनके लेखों के किसी भी अंश का समावेश इस ग्रन्थ में हुआ है।

निम्नलिखित ग्रन्थों से मुझे बहुत कुछ सहायता मिली है अतः इन ग्रन्थ-रत्नों के आदरणीय लेखकों का मैं अति ही आभारी हूँ।

(१) मिश्र-बन्धु-विनोद (२) शिवसिंह सरोज
(३) ब्रज-माधुरी-सार (४) हिन्दी-भाषा का इतिहास
(५) हिन्दी साहित्य का इतिहास (६) रचना और अलङ्कार-प्रबोध
(७) बुन्देलखण्ड का इतिहास (८) कविता-कौमुदी
(९) Modern vernacular literature of Hindustan.
(१०) तुलसी-ग्रंथावली

'सुकवि' के अङ्कों से भी कुछ रचनाएँ उद्धृत की गई हैं अतः उनके लिए भी मैं अपने मित्र सुकवि-सम्पादक सनेहीजी का, जिन्होंने उसकी सहर्ष अनुमति दे दी थी, उपकृत हूँ।

ग्रन्थ में वर्णित कवि

इस ग्रन्थ में उन कवियों ही का वर्णन किया गया है जो कि बुन्देलखण्ड ही में उत्पन्न हुए हैं और जिन्होंने जीवन पर्यन्त बुन्देलखण्ड ही में रहकर अपनी ललित रचनाओं द्वारा भाषा भारती का भण्डार भरकर बुन्देलखण्ड का मस्तक ऊँचा किया है। इनके अतिरिक्त दस-पन्द्रह ऐसे कवि भी इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेंगे जिनका कि जन्म यद्यपि बुन्देलखण्ड के बाहर हुआ है किन्तु उनका कविता-काल या उनके कविता-काल का अधिकांश भाग बुन्देलखण्ड ही में व्यतीत हुआ है। उदाहरणार्थ माननीय मिश्र-बन्धुओं ही को ले लीजिये आपका प्रायः बीस वर्ष से अब तक बुन्देलखण्ड से घनिष्ट सम्बन्ध है; बुन्देलखण्ड में रह कर जितनी साहित्य-सेवा आपने की है वह परम प्रशंसनीय और हम सब ही के लिए अनुकरणीय है। ऐसी अवस्था में माननीय मिश्र-बन्धुओं को 'बुन्देल-वैभव' में

सम्मिलित न किया जाता यह मेरी आत्मा ने स्वीकार नहीं किया और आशा ही नहीं विश्वास है कि अधिकांश पाठक भी इस सम्बन्ध में मुझ ही से सहमत होंगे।

ग्रन्थ का आकार

इस ग्रन्थ का आकार कुछ बढ़ गया है किन्तु सच तो यह है कि यदि भली प्रकार खोज करके बुन्देलखण्ड के कवियों का संक्षिप्त ही इतिहास लिखा जावे तो ऐसे ऐसे दस ग्रन्थ और प्रस्तुत हो सकते हैं। यद्यपि मैंने अपनी भरसक कवियों को खोज निकालने का प्रयत्न किया है फिर भी मुझे विश्वास है कि अभी और भी कितने ही कवि ऐसे होंगे जिनका कि मुझे पता ही नहीं लग सका है।

कविताओं का भावार्थ और टिप्पणियाँ

इस ग्रन्थ में लिखी गई कविताओं के कठिन शब्दों का भावार्थ टिप्पणियों सहित दे दिया गया है, यथा-साध्य कठिन कविताओं का भी अर्थ दे दिया गया है। कवियों की रचनाओं के थोड़े ही से उदाहरण दिए जा सके हैं क्योंकि ग्रन्थ का आकार बढ़ जाने की आशंका सदैव ही ध्यान में बनी रहती थी; कितनी ही रचनाओं पर तो विशेष रूप से लिखने की इच्छा थी किन्तु इसी भय से वैसा मैं नहीं कर सका हूँ और न अपने आलोचनात्मक विचार भी विशेष रूप से कवियों और कविताओं पर मैं लिख सका हूँ। यदि हो सका तो पृथक् ग्रन्थ द्वारा उनको फिर कभी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा।

कवियों के चित्र

जितने भी कवियों के चित्र मिल सके हैं उन सब ही को इसमें देने की व्यवस्था की जा रही है और ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है जिससे प्रमुख-प्रमुख सब ही कवियों के चित्र इसमें आ जावें।

अन्त में मैं अपनी इस अनधिकार चेष्टा के लिए भी क्षमा माँगकर इस भूमिका को समाप्त करता हूँ।

मेरी कठिनाइयाँ

इस प्रकार के एक संग्रह के लिखने की अधिक समय से मेरी इच्छा थी किन्तु साहित्यिक परिज्ञान तथा कविता और भाषा सम्बन्धी अपनी अयोग्यता के कारण इसे प्रारम्भ करने का साहस नहीं होता था। समयाभाव का भी प्रश्न उपस्थित था क्योंकि इस प्रकार के संग्रह ग्रन्थों के लिए पर्याप्त अन्वेषण, समय, धन, सहनशीलता और कितनी ही सुविधाओं की आवश्यकता हुआ करती है और मेरे पास प्रायः इन सब ही का अभाव था; हाँ, एक लगन अवश्य हृदय के कोने में छिपी थी और केवल उसी के बल पर किसी प्रकार इसे अब समाप्त कर सका हूँ।

इस ग्रन्थ के लिए साहित्य जुटाने में जो जो कठिनाइयाँ मुझे उठानी पड़ीं उनका उल्लेख करना अनावश्यक ही सा है उसे तो भुक्तभोगी ही भली प्रकार अनुभव कर सकते हैं। एक एक कवि का जीवन-चरित्र लिखने के लिए अनेक अनेक पुस्तकों का अध्ययन करना पड़ा, जहाँ किसी कवि के सम्बन्ध में थोड़ासा भी अनुसन्धान मिला शीघ्र ही वहाँ को पत्रादि लिखे गए, वहाँ के मित्रों से आग्रह किये गये और अनेक स्थानों को तो दस दस और पन्द्रह पन्द्रह पत्र लिखने पर भी जब कुछ कवि महानुभावों ने पत्रोत्तर तक न दिया तब स्वयम् जाकर, मित्रों को भेजकर और अन्य मित्रों को पत्र लिखकर उनके विषय की बातें मालूम करनी पड़ीं; कतिपय प्राचीन ग्रन्थ बड़ी तपस्या और खुशामद करने के पश्चात् देखने को मिल सके, कितने ही व्यक्तियों के नाज़ और नख़रे उठाने पड़े तब यह ग्रन्थ किसी प्रकार अब पूरा हुआ है।

फिर भी जैसा मैं चाहता था वैसा यह नहीं बन सका है किन्तु जब तक इस प्रकार का कोई अच्छा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है सम्भव है यह ही उस अभाव की किंचित्मात्र पूर्ति करने में कुछ सहायक हो। यदि बुन्देलखण्ड के साहित्यिक और कवि हृदय महानुभावों ने अपना भरपूर सहयोग दिया होता तो मेरी कठिनाइयाँ कितने ही अंशों में कम हो जातीं। क्या ही अच्छा हो कि इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर हम अपना ध्यान दें।

बुन्देलखण्ड के देशी नरेश यदि अपना थोड़ा सा भी ध्यान इस ओर देने की कृपा करें तो बड़ी ही सुगमता से बुन्देलखण्ड के इतिहास का उद्धार हो सकता है। आशा है उदार महानुभाव मेरे इस विनम्र निवेदन पर सहृदयतापूर्वक विचार करने की कृपा करेंगे और ऐसा उद्योग करेंगे जिससे इस ग्रन्थ के अन्य सभी भाग सर्वाङ्ग सुन्दर हो हिन्दी संसार के समक्ष आवें।

मित्रों का सहयोग

यहाँ पर मैं अपने उन मित्रों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट कर देना उचित समझता हूँ जिनके सहयोग से मैं यह ग्रन्थ आप सब की सेवा में प्रस्तुत कर सका हूँ। इस ग्रन्थ को शीघ्र ही प्रस्तुत करने में मुझे आदरणीय राय-बहादुर राव राजा श्री० पं० श्यामविहारीजी मिश्र एम० ए०, मेजर श्री० पं० विन्ध्येश्वरीप्रसादजी पाण्डेय बी० ए० एल एल० बी० और श्री० पं० अश्विनीकुमार जी पाण्डेय बी० ए० से विशेष प्रोत्साहन मिला है। यदि उनका इतना प्रेमपूर्ण अनुरोध न होता तो सम्भव है अभी कुछ वर्ष और इस ग्रन्थ के लिखने और फिर प्रकाशित होने में लग जाते; इन महानुभावों ने अपने अपने विचार भी ग्रन्थ पर प्राक्कथन, दो शब्द और वक्तव्य के रूप में

लिख देने की कृपा की है तदर्थ मैं इन महानुभावों का हृदय से आभारी और अत्यन्त ही कृतज्ञ हूँ। मेरे लिए जो विचार इन महानुभावों ने प्रकट किये हैं उनसे उनके विशाल हृदयों की महानता प्रगट होती है, मैं अपने को उस प्रशंसा का किंचित्मात्र भी पात्र नहीं समझता।

कविवर बा० मैथिलीशरणजी गुप्त, मुंशी अजमेरीजी, श्री पं० सुरेन्द्रनारायणजी तिवारी बी० ए० एल-एल० बी० सेशन जज, श्री० पं० लक्ष्मीनाथजी मिश्र एम० ए० एल-टी० डाइरेक्टर आफ़ ऐजूकेशन ओरछा राज्य, भाई पं० ठाकुरदासजी जैन बी०ए०, श्री० पं० वीरेशचन्द्रजी पन्त एम०ए०, बी०एस-सी०, श्री० पं० सच्चिदानन्दजी उपाध्याय 'आशुतोष', बा० ब्रजमोहनजी वर्मा सहकारी सम्पादक विशाल-भारत, शारद रसेन्द्रजी चित्रकोट तथा श्रवणेशजी झाँसी ने भी समय समय पर अपने सहयोग से उपकृत किया है।

श्री० पं० रामगोपालजी मिश्र बी० एस-सी०, एम० आर० ए० एस० डिपुटी कलक्टर जौनपुर, श्री० पं० गङ्गासहायजी पाराशरी 'कमल' एम० आर० ए० एस० और श्री० पं० रामकिशोरजी शर्मा 'किशोर' बी० ए० को भी बिना धन्यवाद दिए नहीं रहा जाता। इन घनिष्ठ मित्रों से मुझे समय समय पर कितना प्रोत्साहन मिला वह लिखने की बात नहीं हृदय ही जानता है। कठिनाइयों से जब कभी हृदय ऊब जाता था तो इन महानुभावों के पत्रों से और तक़ाजों से एक विशेष उत्तेजना मुझे मिल जाती थी।

इनके अतिरिक्त श्री० पं० गोविन्दवल्लभजी शास्त्री सोरों, रसिकेन्द्रजी कालपी, श्रीप्रकाशदेवजी जैतली कालपी, नाथूरामजी

माहौर, घासीरामजी व्यास, सेवकेन्द्रजी, पं० बालकृष्णदेवजी तैलङ्ग तथा उन सब मित्रों का जिन्होंने इस सम्बन्ध में किंचित्-मात्र भी हाथ बँटाया, सहयोग दिया या परामर्श दिया है, हृदय से आभारी हूँ और उनको उनकी कृपा, उनकी सहृदयता पर अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। यह उन ही की वस्तु है, जो कुछ यह हो सका है उन ही के सहयोग से हो सका है अतः इस सबका श्रेय भी उन ही सबको है; हाँ, भूलों के लिए मैं दोषी हूँ जिसके लिए आशा है सहृदय महानुभाव मुझे क्षमा करने की कृपा करेंगे और उनकी उचित आलोचना करेंगे जिससे भविष्य में उनका सुधार किया जा सके और इसके अन्य भागों में उनसे सहायता मिल सके।

कुछ चित्र मित्रवर पं० दुलारेलालजी भार्गव ने अपने गङ्गा-फाइन-आर्ट प्रेस से छाप दिए हैं उनके लिए मैं भार्गवजी को धन्यवाद देता हूँ।

शान्ति प्रेस आगरा के अध्यक्ष श्री पं० सत्यव्रतजी शर्मा तथा भाई पं० देवीप्रसादजी शर्मा 'दिव्य' का भी मैं अति आभारी हूँ। ग्रन्थ को सर्वाङ्ग सुन्दर छापने में जिस सुरुचि सम्पन्नता का आपने परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है। आपका सज्जनता-मय व्यवहार बड़ा ही सराहनीय रहा है। हिन्दी भाषा के प्रचारार्थ उसके लेखकों को प्रोत्साहन और भरपूर सुविधाएँ देने के लिए आप तथा भार्गवजी के समान प्रेस के अध्यक्षों की नितान्त आवश्यकता है। आशा है हिन्दी के अन्य प्रेस वाले भी हिन्दी के हित-साधन के लिए आपका अनुकरण करेंगे।

अपनी बात

इस भूमिका को समाप्त करने के पूर्व मेरी इच्छा थी कि मैं अपनी प्यारी जन्म-भूमि, अपने पूर्वज तथा अपनी तुच्छ रचनाओं के सम्बन्ध में भी दो शब्द लिख देता क्योंकि मैं इसी प्रकार की शैली को अच्छा समझता हूँ। यदि लेखकगण अपने ग्रन्थों में अपने सम्बन्ध में भी थोड़ा-बहुत लिख दिया करें तो भविष्य में अन्वेषण करने वालों को बड़ी ही सुविधा हो। ऐतिहासिक तत्वान्वेषियों से यह बात छिपी नहीं है कि कवीन्द्र केशव आदि कुछ कवियों ही को छोड़ कर अधिकांश प्राचीन कवियों ने ऐसा नहीं किया है और फलस्वरूप उनके सम्बन्ध की बातें निश्चित करने में अनेकानेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। फिर भी मैं अपने सम्बन्ध में यहाँ कुछ नहीं लिख रहा हूँ उसके अनेक कारण हैं। प्रथम तो अपने सम्बन्ध में अपने आप अच्छी प्रकार कुछ लिखा नहीं जा सकता, अपने दोष अपने आपको दिखलाई नहीं देते और सच्ची बातें भी दूसरों को कभी कभी आत्म-विज्ञापन की बू से भरी हुई जान पड़ती हैं। ऐसी दशा में कतिपय आदरणीय मित्रों का आग्रह होते हुए भी मैंने उसे यहाँ नहीं लिखा है यदि अवसर आया तो इस ग्रन्थ के अन्तिम भाग में उसका समावेश कर दिया जायगा।

एक अभिलाषा

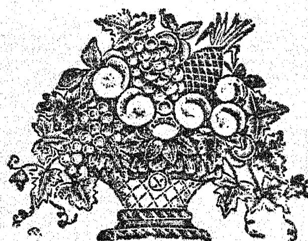
अब अन्त में मैं उस परब्रह्म परमात्मा को, जिसकी कृपा से यह ग्रन्थ हिन्दी संसार के समक्ष आसका है हृदय से धन्यवाद देता हूँ और एक बार फिर अपने विज्ञ पाठकों से अपनी धृष्टता के लिए क्षमा माँगकर उनकी सेवा में 'बुन्देल-वैभव' को प्रस्तुत करता हूँ और आशा करता हूँ कि—

"संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।"

के अनुसार इससे वे समुचित लाभ उठावेंगे। यदि इससे इसके उद्देश की किंचित्‌मात्र भी पूर्ति हो सकी और किसी का भी इससे कुछ भी मनोरंजन हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

केशव-लीला-भूमि
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)
शिवरात्रि सं० १९९० वि०
सोमवार ता० १२।२।१९३४

विनयावनत—
गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'





बुन्देलखण्ड के
कवि

शश्य श्यामला, शीतल जननी,
कविवर-वीर-विभूति प्रसविनी,
है बुन्देलखण्ड की धरिणी,
धरणी तल में धन्य;
कहाँ है, कोई ऐसी अन्य ।
अग्रगण्य है अति शुचिता में,
सरस सरलता में, मृदुता में,
सहिष्णुता में, सहृदयता में,
बीर - बुँदेल - प्रदेश;
यही है, अनुपम जिसका वेश।
कर्त्ता अष्टादश पुरान के,
लेखक 'भारत' के विधान के,
अधिपति विपुल पवित्र ज्ञान के,
बल, तप, तेज निधान;
*यहीं थे, वेद व्यास भगवान् ।

* कालपी वेद व्यास की जन्मभूमि है ।

†बाल्मीकि वसुधा के भूषण,
कृष्णदत्त कवि कुल के पूषण,
‡मित्र मिश्र ने किया निरूपण,
ऐसा ग्रन्थ विशेष;
पुज रहा, है जो देश विदेश।

मधुकरशाह भक्ति रस-रूरे
इन्द्रजीत, विक्रम, बल पूरे,
छत्रसाल नरपति रण-शूरे
वर - बुँदेल - अवतंस;
हुए हैं, कवि-कुल-मानस-हंस।

तुलसीदास ज्ञान गुण सागर,
व्यास, गोप, बलभद्र, जवाहर,
केशवदास कवीन्द्र कलाधर,
भाषा प्रथमाचार्य्य;
हुए थे, इसी भूमि में आर्य्य।

---

† बबीना (उरई) बाल्मीकि की जन्मभूमि है।

‡ ओरछा निवासी श्री मित्र मिश्र ने 'वीर मित्रोदय' नामक एक वृहद् संस्कृत ग्रन्थ बनाया है जो जर्मनी में मुद्रित हुआ है। यह ग्रन्थ-रत्न कई लाख श्लोकों में समाप्त हुआ है और प्रत्येक विषय का साङ्गोपाङ्ग-वर्णन है, संस्कृत का यदि इसे 'विश्वकोष' कहें तो अत्युक्ति न होगी।



सुकवि बिहारीदास गुणाकर,
हरि सेवक, रसनिधि कवि ठाकुर,
पंचम, पुरुषोत्तम पद्माकर,
कवि कल्याण अनन्य;
हुई है, जिनसे बसुधा धन्य।

विष्णु, सुदर्शन, श्रीपति, मण्डन,
खङ्गराय, गङ्गाधर, खण्डन,
किङ्कर, कुंज कुँअर, कवि कुन्दन,
मोहन मिश्र, ब्रजेश;
यहीं थे, रसिक, प्रताप, हृदेश।

हंसराज, हरिकेश, हरीजन,
फेरन, करन कृष्ण कवि सज्जन,
मान, खुमान, भान बन्दीजन,
लोने, खेम, उदेश;
हुए हैं, भौन, बोध, रतनेश।

कोविद, कृष्णदास, कवि कारे,
दिग्गज, रतन, लाल, प्रण वारे,
अंबुज काली, नन्द कुमारे,
नवलसिंह, पजनेस;
हुए थे, मंचित द्विज, अवधेस।

× × × ×

वीर पुरुष कितने हैं जाये,
'शङ्कर' कोई पार न पाये,
विश्व-वंद्य इसने उपजाये,
अगणित-कवि-शिरमौर;
गिनायें शङ्कर कितने और।

जग जीवन वे सफल कर गये,
अमर हुए हैं यदपि मर गये,
भव्य-भारती-कोष भर गये,
कविता-कामिनि - कान्त;
यहीं थे, है ऐसा यह प्रान्त।

× × × ×

मधुप, वियोगीहरि से कविवर,
प्रेम, व्यास, रसिकेन्द्र, गुणाकर,
कवि रसेन्द्र, श्रवणेश, रमाधर,
अब भी सर्व प्रकार;
भर रहे, भाषा का भण्डार।

———

प्रथम खण्ड



कवीन्द्र केशव-काल

[सं० १६१८ वि० से १७०० वि० तक]

के

कवि-गण



❀ श्रीगणेशायनमः ❀

बुन्देल-वैभव

[प्रथम भाग]

१—गोस्वामी तुलसीदास



तःस्मरणीय, शक्ति-वेधित, मृतप्राय हिन्दू-धर्म के सुषेण वैद्यवत् चिकित्सक महात्मा गोस्वामी तुलसीदास शुक्ल आस्पदीय सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपके पूज्य पिताजी का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। गोस्वामीजी का जन्म अनुमानतः सं० १५८९ वि० में सोरों (शूकर-क्षेत्र) में हुआ था। आपके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें हिन्दी-संसार में प्रचलित हैं। कोई आपका जन्म-स्थान राजापुर बतलाता है तो कोई हाजीपुर और सोरों। इसी प्रकार कोई आपको कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखता है तो कोई सरवरिया और सनाढ्य। मुझे बहुत अनुसंधान करने पर आपके सम्बन्ध की जो

बातें मालूम हो सकी थीं, वे मैंने तुलसी-संवत् ३०५ की आषाढ़-मास की माधुरी द्वारा हिन्दी-संसार के समक्ष रक्खी थीं। जब तक उनके विरुद्ध मुझे कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता, तब तक मुझे अपना ही कथन ठीक मालूम होता है। पाठकों की जानकारी के लिए अपने उस लेख को मैं ज्यों-का-त्यों यहाँ उद्धृत किये देता हूँ।

"मनोरमा के नवम्बर-मास के अंक में बाबू श्रीशिवनन्दन-सहायजी का एक लेख गोस्वामी तुलसीदासजी के सम्बन्ध में निकला है। आपका यह लिखना सचमुच ठीक है कि गोस्वामीजी के किसी विशेष जीवन-चरित्र पर सर्वथा सत्यता की छाप देने में बहुत कुछ सावधानी और सोच-विचार की जरूरत है।"

"सच तो यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में जितनी खींचा-तानी हो रही है, उतनी और किसी भी कवि के सम्बन्ध में नहीं हुई है, फिर भी निश्चयात्मक रूप से अब तक कोई बात ठीक नहीं हो सकी है।

"बाबा वेणीमाधवजी के 'मूल-गोसाईं-चरित्र' की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका आदि में यथेष्ट आलोचना हो रही है, और उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता पर भी समुचित प्रकाश डाला जा रहा है। अतः उस पर कुछ और लिखकर इस लेख का कलेवर बढ़ाना अभीष्ट नहीं। प्रस्तुत लेख में तो उन नवीन ज्ञातव्य बातों पर जो अब तक हिन्दी संसार के सामने नहीं आई हैं, प्रकाश डालना है।

"गत वर्ष सोरों-निवासी श्री० पं० गोविन्दवल्लभजी शास्त्री का एक लेख देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसमें शास्त्रीजी ने बड़े ही अच्छे रूप में तुलसीदासजी के सम्बन्ध की बहुतसी

ज्ञातव्य और प्रामाणिक बातें लिखी हैं। आपने उस लेख में लिखा है—'गोस्वामीजी का जन्म सोरों के योग-मार्ग मुहल्ले में हुआ था। इनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम था। ये दोनों माता-पिता तुलसीदासजी को जन्म देकर अल्प समय ही में स्वर्गवासी हो गए थे। तब अनाथावस्था में नगर के चौधरी, सनाढ्य-कुल-रत्न, सर्वशास्त्रज्ञ श्री पं० नरसिंहजी ने इनको पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया और गृहस्थ बनाया था।'

"गोस्वामीजी के एक और भाई थे, जिनका नाम अब भी पुष्टमार्गीय वैष्णवों (गोकुलिया गोसाइयों) के प्रति मन्दिर और प्रति घर में आदरपूर्वक लिया जाता है। इनका शुभ नाम है नन्ददासजी। यह महानुभाव गोस्वामी बिट्ठलनाथजी के शिष्य थे।

"श्रीगोस्वामी बिट्ठलनाथजी का जन्म सं० १५७२ वि० में हुआ था। आप आद्याचार्य श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य्यजी के पुत्र थे। आपको अपने पिताजी की गद्दी १५ वर्ष की अवस्था में, सं० १५८७ वि० में मिली थी, और आप सं० १६४२ वि० में स्वर्गवासी हुए थे। श्रीवल्लभाचार्य अपने जीवन में ८४ ही शिष्य कर सके थे परन्तु श्रीविट्ठलनाथजी ने २५२ शिष्य किए। इन आचार्यों ने अपने शिष्यों को अपना संक्षिप्त परिचय, कुछ स्मरणीय घटनाओं सहित, लेख-बद्ध करते जाने का आदेश दे रक्खा था। उन्हीं लेखों के ये संग्रह '८४ वैष्णवों की वार्ता' और '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के नाम से उस संप्रदाय में आज तीन सौ वर्ष से भी अधिक से सुरक्षित और विख्यात हैं, और धार्मिक दृष्टि से प्रत्येक मंदिर में पूजे जाते हैं।

"इस संप्रदाय के श्रीसूरदासजी आदि ८ महाकवि भी शिष्य थे। इनको अष्टछाप कहा जाता था। इन्हीं में हमारे चरितनायक के भाई नंददासजी भी थे।

"यद्यपि नन्ददासजी और तुलसीदासजी भाई-भाई ही थे, फिर भी हिन्दी-संसार में इनके भाई-भाई होने के सम्बन्ध में अनेक सन्देहात्मक और भ्रमोत्पादक बातें फैली हुई हैं। कोई गोस्वामीजी की जन्म-भूमि तारी, हस्तिनापुर कहते हैं, तो कोई हाजीपुर (चित्रकूट), राजापुर (बाँदा) और सोरों। कोई आपको कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहते हैं, तो कोई सरवरिया और सनाढ्य।

"(अ) माननीय 'मिश्रबंधुओं' ने अपनी पुस्तक 'मिश्र-बंधु-विनोद' में नन्ददासजी को किसी तुलसीदासजी का भाई और ब्राह्मण होना लिखा है।

"(ब) श्री पं० मयाशंकरजी याज्ञिक उन्हें भाई-भाई तो मानते हैं; किन्तु लिखते हैं 'कनौजिया' के स्थान पर 'सनौड़िया'। शब्द भूल से लिख गया मालूम होता है।

"(स) रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदासजी का कहना है कि '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर यह बात चल पड़ी है कि रासपंचाध्यायीवाले नन्ददासजी तुलसीदासजी के भाई थे।

"अब निष्पक्ष होकर देखना यह है कि वास्तव में ठीक बात क्या है। पहली शंका (अ) का तो उत्तर यह है कि संभव है, प्रेस के भूतों की कृपा से किसी एक संस्करण में 'सनाढ्य' शब्द छपने से रह गया हो, परन्तु तीन सौ वर्ष की प्राचीन

हस्त-लिखित पुस्तकों में वह स्पष्ट रूप से पाया जाता है, जिन्हें संशय हो, वे श्रीनाथद्वारा और श्रीगट्टूलालजी के पुस्तकालय बम्बई में जाकर तथा उन्हें देखकर अपनी शंका का समाधान कर सकते हैं।

"दूसरी शंका (ब) तो बिल्कुल ही निराधार और हास्यास्पद है; क्योंकि प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों में स्पष्ट सनौड़िया (सनाढ्य) शब्द लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त सोरों और और ब्रज में अधिकांश सनाढ्य ब्राह्मणों की ही आबादी है।

"तीसरी शंका (स) वाली वार्ता के आधार पर जो बात चल पड़ी है, वह मिथ्या थोड़े ही है, ठीक ही है। वार्ता को पढ़ने और निष्पक्ष होकर विचार करने से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददासजी और तुलसीदासजी भाई-भाई और सनाढ्य ब्राह्मण थे।

"श्रीविट्ठलनाथजी ने सं० १५९५ वि० १६४२ वि० तक अपने संप्रदाय का प्रचार किया था, और इसी समय के भीतर नन्ददासजी ने भी इनसे दीक्षा ली थी। गोस्वामीजी का भी कविता-काल इसी समय के अन्तर्गत माना जाता है। यथा—

संवत सोरहसै इकतीसा ;
करौं कथा हरि-पद धरि सीसा।
(रा० बा० का०)

"अब पाठकों के अवलोकनार्थ वार्ता के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। विचार किया जाय कि इन पंक्तियों से क्या प्रतिध्वनित होता है। क्या यह समस्त वर्णन गोस्वामीजी के अतिरिक्त किसी और तुलसीदासजी का भी हो सकता है?

"(क) 'सो वे नन्ददास पूर्व में रहते, सो वे दोय भाई हते। सो बड़े भाई तुलसीदास हते, और छोटे भाई नन्ददास हते, सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते।'......

"(ख) 'सो तब कितनेक दिन में वह संग कासी में आन पहुँच्यौ, तब नन्ददास के बड़े भाई तुलसीदास हते, सो तिनने सुनी, जो यह संग श्रीमथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा संग में आय के पूछ्यौ, जो वहाँ श्रीमथुराजी में श्रीगोकुल में नन्ददास नाम करिके एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो है, सो पहिले वहाँ सुन्यौ हतो, सो काहू ने देख्यौ होय, तो कहौ। तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों कही, जो एक सनौड़िया (सनाढ्य) ब्राह्मण है, सो ताको नाम नन्ददास है, सो वह पढ्यो बहुत है, सो वह नंददास तो श्रीगोसाईंजी को सेवक भयौ है।'

"(ग) 'और एक समय नंददास को बड़ो भाई तुलसीदास ब्रज में आयौ, ता पाछे श्रीमथुराजी में तुलसीदास आए। सो तब आयके पूछी, जो यहाँ गुसाईंजी को सेवक नंददास कहाँ रहत है?......तब तुलसीदास ने नन्ददास के पास आय के कह्यौ, जो नन्ददास तू ऐसो कठोर क्यों भयो है?......तेरो मन होय, तो अजुध्या में रहियो, तेरो मन होय, तो प्रयाग में रहियो, चित्रकूट में रहियो।'

"उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वे गोस्वामी तुलसीदासजी ही से संबंध रखते हैं, किसी दूसरे तुलसीदास से नहीं। तुलसीदासजी का ब्रज में आना, नंददासजी की खोज करना, उनसे प्रीति-पूर्वक अपने साथ चलने का अनुरोध करना और अयोध्या, प्रयाग तथा चित्रकूट का नामोल्लेख

करके उन स्थानों में रहने का आग्रह करना आदि अंश उनके भाई-भाई के संबंध को भली भाँति पुष्ट करते हैं।

इस किंवदंती से भी—

"कहा कहौं छबि आज की, भले बने हौ नाथ,
तुलसी-मस्तक जब नवै, धनुष बाण लो हाथ।"

उपर्युक्त कथन ही सिद्ध होता है।

"हाँ, राजापुर को तुलसीदासजी का जन्म-स्थान सिद्ध करनेवाले महानुभावों के सामने यह कठिनाई अवश्य आती है कि राजापुर (बाँदा) की ओर अधिकांश में सरवरिया ब्राह्मण ही रहते हैं। अस्तु, उनके अतिरिक्त गोस्वामीजी को अन्य ब्राह्मण कैसे मान लें ? और यही कारण है कि कल्पनाओं के आधार पर गोस्वामीजी को सरवरिया ब्राह्मण लिख मारा, और नंददासजी के भाई तुलसीदास कोई और तुलसीदास होंगे, ऐसा कहकर उनके भाई-भाई होने में संशय उत्पन्न कर भ्रम डाल दिया गया; अन्यथा 'वार्ता' की प्रामाणिकता में संदेह करने का कोई कारण ही नहीं रह जाता है, और सच बात तो यह है कि कल्पनाओं का महत्व तभी तक रहता है, जब तक कोई ऐतिहासिक और प्रामाणिक बात नहीं मिलती। प्रमाण मिल जाने पर तो वास्तव में उनका कुछ मूल्य नहीं रह जाता है।

"कुछ महानुभाव यह कहकर भी कि गोस्वामी तुलसीदास राम-भक्त और नंददासजी कृष्ण-भक्त थे, उनके भाई-भाई होने में संदेह करते हैं, किंतु यह भी लचर दलील और बेसिर-पैर की बात है। एक भाई का राम-भक्त और दूसरे भाई का कृष्ण-भक्त होना अनहोनी बात नहीं। खोजने से ऐसे एक-दो नहीं, सैकड़ों उदाहरण इतिहास में मिल सकते हैं। और, आजकल भी तो

हम एक ही घर में पिता को सनातनधर्मी, एक भाई को आर्य-समाजी और दूसरे को राधास्वामी मत का प्रत्यक्ष देखते हैं।

"श्री पं० गोविन्दवल्लभजी शास्त्री से यह भी मालूम हुआ है कि नंददासजी का एक विस्तृत जीवन-चरित नाथद्वारे में था, परंतु वह बिट्ठलनाथजी की दूसरी पीढ़ी में गृह-कलह के कारण अन्य पुस्तकों के साथ स्थानांतरित होकर नष्ट हो गया है। तो भी प्रचलित किंवदंतियों से भी बहुत कुछ पता चलता है। नाभाजी द्वारा रचित भक्तमाल की प्रियादासकृत टीका में नंददासजी का जन्मस्थान रामपुर लिखा है। इस पर लेखकों ने रामपुर-स्टेट तथा बरेली के निकट किसी ग्राम की कल्पना कर ली है, यह ठीक नहीं।

"सोरों, ज़िला एटा के समीप रामपुर एक नगर था। १५वीं शताब्दी में वर्त्तमान सोरों-निवासी समस्त ब्राह्मणों के पूर्वज उसी ग्राम में रहते थे, और उसी ग्राम में नन्ददासजी के पिता का जन्म हुआ था। पश्चात् नन्ददासजी के पिता सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में आबाद हो गए थे। पीछे नन्ददासजी ने धन-सम्पन्न होने पर रामपुर को हस्तगत किया था, और उसका नाम बदल कर रामपुर से श्यामपुर रख दिया था। इसकी पुष्टि सोरों और उसके निकटवर्ती गाँवों में प्रचलित इस कहावत से कि 'नन्ददास सुकुल कियो रामपुर से श्यामपुर' भली भाँति होती है।

"गोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में अपने विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं लिखा है। उस समय परिपाटी ही ऐसी थी। दो-एक कवियों को छोड़कर प्रायः सभी कवियों ने ऐसा ही किया है। फिर भी गोस्वामीजी की कविता में कहीं-कहीं उनके गुरु, कुल ग्राम आदि की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। देखिए—



पुनि मैं निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत;
समझी नहिं तसि बालपन, तब हौं रह्यों अचेत।

× × × ×

तदपि कही गुरु बारहिं बारा;
समुझि परी कछु मति-अनुसारा।

(रा० बा० का०)

× × × ×

बंदउँ गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नररूपहरि;

× × × ×

"कोई-कोई विनयपत्रिका और कवितावली" के आधार पर बाल्यावस्था में गोस्वामीजी के माता-पिता के मर जाने अथवा उनके त्यागे जाने कल्पना करते हैं, और कोई-कोई मूल-नक्षत्र में जन्म होने से माता-पिता द्वारा उनका फेंक दिया जाना और बैरागी साधु नरसिंहदासजी को पड़े मिलना तथा उनके द्वारा शूकर-क्षेत्र में पाला-पोसा बतलाते हैं। यथा—

द्वार-द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाउँ।

(वि० पत्रिका, २७५)

× × × ×

जनक-जननि तज्यो जनमि काम बिनु।

(वि० पत्रिका, २२७)

× × × ×

जायो कुल मंगन बँधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

(कवितावली, २१५)

"हम कहते हैं, इतनी क्लिष्ट कल्पना किस लिए ? जब नन्द-दासजी उनके भाई सिद्ध हो चुके हैं, तब वहीं से परंपरा क्यों न मिला लीजिए। देखिए, निम्न-लिखित बातों से यह और भी स्पष्ट हो जायगा कि राजापुर गोस्वामीजी की जन्म-भूमि थी या सोरों—

"(अ) राजापुर यदि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान होता और सोरों केवल उनका गुरु-स्थान, तो वैराग्य लेने के पश्चात् गोस्वामीजी सोरों से असहयोग और राजापुर से सहयोग कदापि न करते। दूसरे, यह कैसे सम्भव है कि राजापुर घर होते हुए भी वह कुटी बना कर अपनी प्रारम्भिक वैराग्यावस्था में भी वहाँ आराम से रह सकते और उनके सम्बन्धी—विशेषतः उनकी स्त्री—कुछ भी विघ्न-बाधा न पहुँचाते; क्योंकि गोस्वामीजी विवाहित थे, यह तो सिद्ध ही है। यदि वह घर या घर के नज़दीक रहे होते, तो यह कभी सम्भव न था कि उन पर गृहस्थाश्रम में लौट आने के लिए भरपूर आग्रह न किया जाता, या दबाव न डाला जाता; किन्तु इसका विवरण कहीं भी नहीं मिलता।

"(ब) अयोध्या, चित्रकूट, काशी आदि अनेक स्थानों का गोस्वामीजी ने अपने जीवन में अनेक बार और भली भाँति भ्रमण किया था; किन्तु अपने जन्म-स्थान (सोरों) से जब से गए फिर नहीं आए, और यह है भी स्वाभाविक। इन बातों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि गोस्वामीजी की जन्म-भूमि सोरों ही थी, राजापुर नहीं।

"कहते हैं, एक बार नन्ददासजी के पुत्र कृष्णदासजी अपने चाचा गोस्वामी तुलसीदासजी को लिवाने राजापुर गए थे, और उनसे अनेक प्रकार अनुनय-विनय भी की थी, किन्तु गोस्वामीजी

नहीं आए। हाँ, एक पत्र पर एक पद लिखकर दे दिया था, जिसे लेकर कृष्णदासजी लौट आए थे। वह पद यह है—

नाम राम रावरोई हित मेरे;
स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहुँ टेरे।
जननी-जनक तज्यो जनमि कर्म बिनु बिधिहूँ सृज्यों हों अब टेरे;
मोह से कोउ-कोउ कहत रामहिं को, सो प्रसंग केहि केरे।
फिरयो ललात बिनु नाम उदर लगि दुसह दुखित मोहिं हेरे;
नाम प्रसाद लसत रसाल-फल, अब हों मधुर बहेरे।
साधत साधु लोक परलोकहि, सुनि-गुन जतन घनेरे;
'तुलसी' को अवलंब नामहि को, एक गाँठ बहु फेरे।

"नन्ददासजी के वंशजों का सं० १८६० वि० तक रहने का शोध मिलता है। इसके पश्चात् वंश-विच्छेद हो जाने के कारण उनकी संपत्ति जिस वंश को मिली थी, वह उपाध्याय (हरूके) कहा जाता है।

"सोरों में अब भी जिस किसी को कर्ण-रोग हो जाता है, तो इन्हीं महान् पुरुषों के प्राचीन गृहों के ध्वंसावशेषों (खँड-हरों) की मिट्टी लाकर लगा देते हैं। लोगों का विश्वास है कि तुलसीदासजी का जन्म-स्थल होने के कारण पुण्य भूमि के प्रताप से रोग दूर हो जाता है।

"गोस्वामीजी के गुरु श्रीनरसिंहजी का स्थान अब भी सोरों में विद्यमान है, और वह नरसिंहजी के मन्दिर के नाम से विख्यात है। लोगों ने भ्रम-वश इन्हें बैरागी (रामानन्दी) लिख मारा है, किन्तु यह ठीक नहीं। वह गृहस्थ सनाढ्य ब्राह्मण थे, और उनके वंशज अभी विद्यमान हैं, तथा चौधरी की उपाधि से विभूषित हैं।

"श्रीनरसिंहजी धन-सम्पन्न होने के साथ-ही-साथ सहृदय और विद्वान् भी थे, अतएव मातृ-पितृ-हीन अपने सजातीय बालक (गो० तुलसीदासजी) की रक्षा, दीक्षा, पालन-पोषण आदि का उन्होंने समुचित प्रबन्ध किया था। इसके अतिरिक्त यह भी एक बात ध्यान देने की है कि यदि गोस्वामीजी किसी रामानन्दी साधु के शिष्य होते, तो रामायण के प्रारम्भ ही में—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ ।
भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ;
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ।

"इस प्रकार मंगलाचरण न करते और श्रीरामानुज स्वामी या रामानन्द स्वामी का कहीं-न-कहीं नामोल्लेख अवश्य ही कर जाते; किन्तु ऐसा न करके वह अपना स्मार्त वैष्णवमत प्रति-पादन कर गए हैं, और स्मार्तों की ही रामनवमी वह मनाते भी थे।

"गोस्वामीजी का विवाह सोरों के ही एक उपनगर बदरिया नामक ग्राम में हुआ था। गोस्वामीजी के ग्रन्थों की भाषा में भी व्रज-भाषा का बाहुल्य है इससे भी उपर्युक्त बात ही पुष्ट होती है। और भी अनेकानेक प्रमाण हैं, जिन्हें संशय हो, वे सोरों-निवासी पं० गोविंदवल्लभजी शास्त्री से पत्र-व्यवहार कर या स्वयं सोरों जाकर तथा अनुसन्धान कर अपनी शंकाओं का निवारण कर सकते हैं।

"हिन्दी-संसार में फैले हुए भ्रम को दूर करने के उद्देश्य से ही यह लेख लिखा गया है। आशा है, प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी और विशेषकर 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' के अन्वेषण-प्रेमी

महानुभाव इस पर निष्पक्ष भाव से विचार करके समुचित प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।"

उपर्युक्त लेख से गोस्वामीजी के जन्म-स्थान, उनके गुरु, उनके माता-पिता और अन्य ज्ञातव्य बातों का भली प्रकार पता चल गया होगा। अब गोस्वामीजी की चिरस्मरणीय घटनाओं को लिखकर मैं अग्रसर होता हूँ।

(अ) गोस्वामीजी का वैराग्य

सुनते हैं, गोस्वामीजी अपनी स्त्री पर बहुत आसक्त थे। एक बार आपकी स्त्री आपकी अनुपस्थिति में अपने पिता के यहाँ चली गई। जब गोस्वामीजी को यह मालूम हुआ, तो वह भी ससुराल चल दिए। ससुराल में स्त्री से भेंट होने पर आपकी स्त्री ने आपसे कहा—

लाज न लागत आपको, दौरे आएहु नाथ,
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ!
अस्थि-चरम-मय देह मम तामें जैसी प्रीति;
तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भव-भीति।

यह सुनकर गोस्वामीजी वहाँ से तुरन्त विना भोजन आदि किए ही चल दिए और काशी में विरक्त होकर रहने लगे।

(आ) गोस्वामीजी की भक्ति और सफलता

यह प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी शौच के लिए नित्य गंगापार जाया करते थे और लौटते समय लोटे में बचा हुआ पानी एक बबूल के पेड़ की जड़ में डाल देते थे। उनकी इस क्रिया से उस पेड़ पर रहने वाला एक प्रेत प्रसन्न होगया और उसने वरदान माँगने के लिए कहा। गोस्वामीजी ने श्रीरामचन्द्रजी के



दर्शन करा देने के लिए कहा। उसने कहा—"यह तो मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है, किन्तु युक्ति मैं अवश्य बतलाए देता हूँ।" उसने एक मन्दिर बतलाया, जिसमें नित्य रामायण की कथा होती थी। उसने बतलाया कि उस मन्दिर में एक बहुत ही मैला-कुचैला कोढ़ी सबसे पहले कथा सुनने आता और सबसे पीछे जाता है। वे साक्षात् हनुमानजी हैं। उनसे प्रार्थना करो, यदि वे प्रसन्न हो गए तो संभव है, आपकी मनोकामना पूरी हो जाय। गोस्वामीजी ने ऐसा ही किया और एक दिन अकेले में उनके चरण पकड़कर जब तक उन्होंने यह न कह दिया कि "जाओ, चित्रकूट में दर्शन होंगे" तब तक पैर न छोड़े। तत्पश्चात् उन्हें चित्रकूट में श्रीरामजी के दर्शन हो ही गये।

× × × ×

अपने इष्ट के गोस्वामीजी इतने दृढ़ थे कि श्रीकृष्ण भगवान् ने भी इनकी प्रार्थना पर मुरली त्यागकर धनुष-बाण हाथ में ले लिया था। उस समय तुलसीदासजी ने यह दोहा कहा था, ऐसा कहा जाता है—

का बरनउँ छबि आज की, भले बिराजेउ नाथ,
तुलसी मस्तक तब नवै, (जब) धनुष-बाण लेउ हाथ।

× × × ×

सुनते हैं, कोई ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री सती होने जा रही थी। मार्ग में उसने गोस्वामीजी से प्रणाम किया; गोस्वामीजी ने "सौभाग्यवती हो" ऐसा आशीर्वाद दिया। पीछे जब गोस्वामीजी को उसके पति के मर जाने का हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने गंगा-स्नान करके तीन दिन स्तुति की, जिससे वह ब्राह्मण जी उठा।

× × × ×



ब्राह्मण जीवित करने की बात जब बादशाह ने सुनी, तो उसने गोस्वामीजी को बुलाकर कुछ करामात दिखलाने के लिए कहा। गोस्वामीजी के यह कहने पर कि मैं सिवा राम-नाम के और कोई करामात नहीं जानता, बादशाह ने उन्हें दिल्ली के क़िले में बन्द कर दिया और कह दिया कि जब तक करामात न दिखलाओगे, क़ैद से न छूटने पाओगे। गोस्वामीजी को क़ैद देखकर बन्दरों के समूह ने क़िले को विध्वंस करना आरम्भ कर दिया और ऐसी दुर्गति की कि बादशाह गोस्वामीजी के पैरों पर गिरकर रक्षा करने के लिए प्रार्थना करने लगा। तब गोस्वामीजी ने हनुमानजी की प्रार्थना की और उपद्रव शान्त हुआ। गोस्वामीजी ने बादशाह से यह भी कहा कि अब इस क़िले में हनुमानजी का वास हो गया है। तुम दूसरा क़िला बनवाओ, जिसे बादशाह ने स्वीकार कर लिया।

कानन भूधर वारि बयारि दवा विष-ज्वाल महा अरि घेरे ;
संकट कोटि परो तुलसी तहँ मातु-पिता-सुत-बंधु न नेरे।
राखहिं राम कृपा करिकै हनुमान से पायक हैं जिन केरे ;
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे।

इत्यादि आठ पद्य क़ैद होने पर और कुछ पद्य उपद्रव शान्ति के लिए बनाए थे, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी ;
इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी।
लोक-रीति देखी सुनी व्याकुल नर-नारी ;
अति बरषे अनबरषेहु देहिं दैवहिं गारी।

इत्यादि

× × × ×

यह प्रसिद्ध है कि 'भक्तमाल' नामक ग्रन्थ के कर्ता नाभादासजी गोस्वामीजी से मिलने काशी गए थे, किन्तु गोस्वामीजी उस समय ध्यान में थे अतः नाभाजी से कुछ बातचीत न हो सकी। नाभाजी उसी दिन वृन्दावन चले आए, जब गोस्वामीजी को यह मालूम हुआ तो वह बहुत पछताए और नाभाजी से मिलने वृन्दावन पहुँचे। दैवयोग से जिस दिन गोस्वामीजी वहाँ पहुँचे, नाभाजी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था। गोस्वामीजी बिना बुलाए ही उसमें पहुँच गए, और बैरागियों की पंक्ति के अन्त में बैठ गए। परोसने के समय खीर के लिए कोई पात्र न होने के कारण आपने चट एक साधु का जूता उठा लिया और कहा कि इससे अच्छा बर्तन और क्या हो सकता है। इस पर नाभाजी ने उन्हें गले लगा लिया और कहा कि आज मुझे भक्तमाल का सुमेरु मिल गया।

गोस्वामीजी का परिचय और मान

बड़े-बड़े पण्डितों के अतिरिक्त सम्राट् अकबर, अब्दुलरहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, महाराज बीरबल, कवीन्द्र केशवदासजी से आपका अच्छा परिचय था। अकबर के दरबार में भी आपका अति ही अधिक मान होता था। अकबर प्रायः आपको आदर-पूर्वक बुलाकर आपके सत्संग से लाभ उठाया करता था। इसी प्रकार की एक घटना सुकवि-सरोज के प्रथम भाग में पृष्ठ ९, १०, ११ पर लिखी जा चुकी है, और भी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

× × × ×

अब्दुलरहीम खानखाना 'रहीम', जो अकबर के प्रसिद्ध मन्त्री थे, गोस्वामीजी को बहुत ही मानते थे। एक बार किसी दीन

ब्राह्मण ने अपनी कन्या के विवाह के लिए गोस्वामीजी से द्रव्य माँगा। गोस्वामीजी ने काग़ज़ का एक पर्चा उसे देकर कहा कि इसे ख़ानख़ाना के पास ले जाओ, इच्छा पूरी हो जायगी। उस पर्चे पर दोहे का आधा चरण गोस्वामीजी ने लिख दिया था। वह यह है—

सुर-तिय, नर-तिय, नाग-तिय, सब चाहत अस होय;

ख़ानख़ाना ने ब्राह्मण को पर्याप्त धन देकर बिदा किया और उसके हाथ उत्तर में दोहे का दूसरा चरण इस प्रकार लिख भेजा—

गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी-सो सुत होय।

× × ×

आमेर के महाराज मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह गोस्वामीजी के पास प्रायः आया करते थे और भी बड़े-बड़े प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा आपका सदैव ही सम्मान होता रहता था। एक दिन किसी ने आपसे पूछा—"महाराज! पहले तो आपके पास कोई नहीं आता था, अब तो बड़े-बड़े लोग आपकी सेवा में आते हैं।" तब गोस्वामीजी ने कहा—

लहै न फूटी कौड़ि हूँ, को चाहै कोई काज;
सो तुलसी महँगो कियो, राम गरीबनिवाज।

× × ×

घर-घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय;
ते तुलसी तब राम बिनु, ये अब राम सहाय।

इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे हमें अमूल्य शिक्षाएँ मिल सकती हैं। आपके संबंध में विशेष जाननेवालों को काशी-

नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी-ग्रंथावली' देखना चाहिए।

गोस्वामीजी ने निम्न-लिखित ग्रंथों की रचना की है—

(१) दोहावली (२) गीतावली
(३) विनयपत्रिका (४) कवित्त-रामायण
(५) रामाज्ञा (६) रामचरित-मानस
(७) बरवै-रामायण (८) रामलला नहछू
(९) पार्वती-मंगल (१०) जानकी-मंगल
(११) कृष्ण-गीतावली (१२) वैराग्य-संदीपनी
(१३) राम-सतसई (१४) छप्पय-रामायण
(१५) झूलना-रामायण (१६) कुंडलिया-रामायण
(१७) रोला-रामायण (१८) कड़खा-रामायण
(१९) राम-शलाका (२०) संकट-मोचन
(२१) हनुमान-बाहुक (२२) छंदावली

(१) दोहावली

५७३ दोहों का इसमें संग्रह है।

उदाहरण—

साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं वेद-पुरान॥

\+ + +

श्रुति-सम्मत हरि-भक्ति-पथ, संजुत बिरति-बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह-बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥

\+ + +

गौंड़ गँवार नृपाल महि, जवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

\+ + +



तुलसी पावस[1] के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर[2] बोलि हैं, हमहिं पूछि है कौन॥

\+ + +

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहियतु साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कुमाच?

(२) गीतावली

ब्रजभाषा में श्रीरामचन्द्रजी की बाल-लीलाओं आदि का सुंदर वर्णन किया है।

उदाहरण—

जननी निरखत बाल धनुहिआँ।
बार-बार उर नयननि लावति प्रभुजु की ललित पनहिआँ[3]॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सकारे[4]।
उठहु तात, बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे॥
कबहुँ कहत बड़ बार भई ज्यों जाहु भूप पै भैया।
बंधु बोलि जेंइए जो भावै गई नेछावरि मैया॥
कबहुँ समुझि बन-गमन राम को रहि चकि चित्र-लिखी-सी।
तुलसिदास या समय कहे ते लागत प्रीति सिखी-सी॥

(३) विनयपत्रिका

इस ग्रन्थ को लिखने में गोस्वामीजी ने बड़ा ही कौशल दिखलाया है। श्रीरामचन्द्रजी के नाम यह पत्रिका लिखी गई है। इस ग्रन्थ में आपने भक्ति, विनय और साहित्य की त्रिवेणी

---

१ पावस = वर्षा-काल। २ दादुर = मेंढक। ३ पनहिआँ = पदत्राण, जूता। ४ सकारे = प्रातःकाल, सवेरे।

(मन्दाकिनी) सी बहा दी है। विनयपूर्ण आवेदन पत्र लिखने में आपने अपना सब ही सञ्चित ज्ञान प्रदर्शित कर दिया है। फलस्वरूप आपके मनोदेवता ने श्रीरामचन्द्रजी की सही कर देने की सूचना देते हुए पूर्ण सफलता भी दे दी। इसमें आपने प्रायः सब ही देवताओं से विनय की है। उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

ऐसी कौन प्रभु की रीति।
विरद[1] हेत पुनीत परिहरि पांवरनि पर प्रीति॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट[2] लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु यादवराइ॥
काम मोहित गोपिकन पर कृपा अतुलित कीन्ह।
जगत पिता विरंचि[3] जिन्ह के चरण की रज लीन्ह॥
नेम ते शिशुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि।
कियो लीन सो आपु में हरि राज सभा मँझारि॥
व्याध चित दै चरण मारयो मूढ़ मति मृग जानि।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रकट करि निज बानि॥
कौन तिन्ह की कहै जिन के सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रकट पातक रूप तुलसी शरण राख्यो सोउ॥
श्री रघुवीर की यह बानि।
नीचहुँ सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि॥
परम अधम निषाद पांवर कौन ताकी कानि।
लियो सो उर लाय सुत ज्यों प्रेम की पहिचानि॥
गीध कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सानि।

---

१ विरद = यश, कीर्ति। २ कालकूट = हलाहल विष। ३ विरंचि = ब्रह्मा।



जनक ज्यों रघुनाथ ता कहँ दियो जल निज पानि ॥
प्रकृति मलिन कुजाति शबरी सकल अवगुण खानि ।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥
रजनिचर अरु रिपु विभीषण शरण आयो जानि ।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह दशा भुलानि ॥
कौन सौम्य[1] सुशील वानर जिनहिं सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा पूजे भवन अपने आनि ॥
राम सहज कृपालु कोमल दीन हित दिन दानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल[2] कपट न ठानि ॥

(४) कवितावली ।

लङ्का-दहन का वर्णन करते हुए देखिए कैसा सजीव चित्र लाकर आपने उपस्थित कर दिया है ।

लागि, लागि आगि भागि भागि चले जहां तहां,
धीय[3] को न माय, बाप, पूत न सँभारहीं ।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुंध अंध,
कहैं बारे बूढ़े "बारि बारि" बार बारहीं ॥
हय[4] हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं ।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात, तात ! तौंसियत झौंसियत झारहीं ॥
लपट कराल ज्वाल जाल-माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे ।

---

१ सौम्य = सुशील, मांगलिक । २ कुटिल = कपटी, टेढ़ा, छली ।
३ धीय = पुत्री, लड़की । ४ हय = घोड़ा ।

पानी को ललात, बिललात जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे ॥
प्रिया तू पराहि[1], नाथ ! तू पराहि प्रिया कहै,
बाप ! तू पराहि, पूत पूत ! तू पराहि रे ।
तुलसी बिलोक लोग व्याकुल बिहाल[2] कहैं ।
लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे ॥

(५) रामाज्ञा

इस ग्रन्थ में ४६, ४६ दोहों के सात अध्याय हैं; इस प्रकार ३४३ दोहों का यह सुन्दर संग्रह शकुन-विचार करने के काम में आता है।

उदाहरण:—

सप्तक १—मङ्गल मङ्गल भूमि हित, नृपहित जय संग्राम;
सगुन बिचारब समय सम, करि गुरुचरण प्रणाम ।
सप्तक २—राहु केतु उलटे चलहि, अशुभ अमङ्गल मूल;
रुण्ड मुण्ड पाषण्ड प्रिय, असुर अमर प्रतिकूल[3] ।
सप्तक ३—राम बामदिसि[4] जानकी, लषनु दाहिनी ओर;
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर ।
सप्तक ४—पय नहाइ, फल खाइ, जपु रामनाम षट मास[5];
सगुन सुमङ्गल सिद्ध सब, करतल[6] तुलसीदास ।
सप्तक ५—पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम;
सुलभ सिद्ध सब सगुन शुभ, सुमिरत सीताराम ।

---

१ पराहि=भाग । २ बिहाल = दुखी । ३ प्रतिकूल = उलटे । ४ बाम दिसि = बाईं ओर । ५ षट् मास = छह महीने ६ मास । ६ करतल = हाथ में, मिल जाता है ।

सप्तक ६—अवध-प्रवेश[1] अनन्दु बड़, सगुन सुमङ्गल माल;
राम-तिलक-अवसर कहब, सुख सन्तोष सुकाल।

सप्तक ७—सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान[2];
होइ सुफल शुभ जासु जसु, प्रीति प्रतीति प्रमान।
गुन विश्वास, विचित्र मनि, सगुन मनोहर हारु;
तुलसी रघुबर-भगत-उर, बिलसत[3] बिमल विचारु।

(६) रामचरित-मानस

सात काण्डों में श्रीरामचन्द्रजी का विस्तार-पूर्वक इसमें वर्णन किया गया है। गोस्वामीजी का यह सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। राजाओं के राजप्रासादों से लेकर दीन-हीन की झोंपड़ियों तक में इसका समान रूप से आदर और प्रचार है। भारतवर्ष में बिरला ही कोई ऐसा होगा, जिसने इसकी वाणी से अपने कान पवित्र न किए हों। अन्य अनेक भाषाओं में भी इसके अनुवाद निकल चुके हैं, और दिनों-दिन निकलते ही जाते हैं। जितनी ख्याति इस ग्रन्थ की हुई है, संसार में उतनी ख्याति अब तक किसी भी अन्य ग्रन्थ की नहीं हो सकी है। इस ग्रन्थरत्न ने सर्वोच्च सिंहासन पर बिठलाकर आपको सर्वदा को अमर कर दिया है। यद्यपि यह ग्रन्थ घर-घर प्रस्तुत है, फिर भी प्रसंग-वश इसके दो-एक उदाहरण दे देना अनुपयुक्त न होगा।

देखिए, निम्नलिखित चौपाइयों में साहित्य के नवरसों का कैसी सुन्दरता से आपने वर्णन किया है:—

---

१ अवध-प्रवेश = अयोध्या में आने ही से। २ नयनवान = नम्रता युक्त। ३ बिलसत = आते हैं।

देखहिं भूप महा रणधीरा।
मनहुँ वीर रस धरे शरीरा[1] ॥

डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी।
मनहुँ भयानक मूरति भारी[2] ॥

रहे असुर छल जो नृप वेषा।
तिन प्रभु प्रकट काल-सम देखा[3] ॥

पुरवासिन देखे दोऊ भाई।
नर-भूषण लोचन-सुखदाई ॥

नारि विलोकहिं हर्ष हिय, निज-निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृङ्गार धर, मूरति परम अनूप[4] ॥

विदुषन प्रभु विराटमय दीशा।
बहु मुख कर पग लोचन शीशा[5] ॥

जनक-जाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥

सहित विदेह विलोकहिं रानी।
शिशु-सम प्रीति न जाय बखानी[6] ॥

योगिन परम तत्त्वमय भाषा।
शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशा[7] ॥

हरिभक्तन देखे दोऊ भ्राता।
इष्टदेव इव सब सुख दाता[8] ॥

रामहिं चितव भाव जेहि सीया।
सो सनेह सुख नहिं कथनीया[9] ॥

---

१ देखहिं···शरीरा = वीर रस। २ डरे···भारी = भयानक रस। ३ रहे···देखा = रौद्र रस। ४ पुरवासिन···अनूप = शृङ्गार रस। ५ विदुषन···शीशा = बीभत्स रस। ६ सहित···बखानी = करुणारस। ७ योगिन···प्रकाशा = शान्त रस। ८ हरि···सुखदाता = अद्भुत रस। ९ रामहिं···कथनीया = हास्य रस।



उर अनुभवित न कहि सक सोऊ।
कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
ज्यहि विधि रहा जाहि जस भाऊ।
तेइँ तस देखेउ कौशल राऊ॥

राजत राज समाज महँ,
कौशल राज किशोर।
सुन्दर श्यामल गौर तनु,
विश्व विलोचन चोर॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
शरद चन्द निन्दक मुख नीके।
नीरज नयन भावते जीके॥
चितवन चारु मार[1] मद[2] हरणी।
भावत हृदय जाइ नहिं वरणी॥
कल कपोल श्रुति[3] कुण्डल लोला।
चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला॥
कुमुद बन्धु कर निन्दक हासा।
भृकुटी विकट मनोहर नासा॥
भाल विशाल तिलक झलकाहीं।
कच[4] विलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनी शिरन सुहाई।
कुसुम कली बिच बीच बनाई॥

---

१ मार=कामदेव। २ मद= गर्व, अहङ्कार। ३ श्रुति=कान।
४ कच=बाल।

रेखा रुचिर कम्बु[1] कल ग्रीवा ।
जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवा ॥

कुञ्जर[2] मणि कण्ठा कलित,
उर तुलसी की माल ।
वृषभ कन्ध केहरि ठवनि,
बल निधि बाहु विशाल ॥

कटि तूणीर[3] पीत पट बांधे ।
कर शर धनुष वाम वर कांधे ॥
पीत यज्ञ उपवीत सुहाये ।
नख शिख मन्जु महा छबि छाये ॥

+ + +

संत और असंतों के लक्षण देखिए आपने कितने अच्छे वर्णन किए हैं।

सन्तन के लक्षण सुनु भ्राता ।
अगणित श्रुति पुराण विख्याता ॥
सन्त असन्तन की अस करणी ।
जिमि कुठार चन्दन आचरणी ॥

काटे परशु मलय सुनु भाई ।
निज गुण देइ सुगन्ध बसाई ॥
ताते सुर शीशन चढ़त जग बल्लभ श्रीखण्ड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशु वदन यह दण्ड ॥

---

१ कम्बु=शंख की चूड़ी । २ कुंजर=हाथी । ३ तूणीर=तरकश ।

विषय अलम्पट शील गुणाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥

सम अभूत रिपु बिमद विरागी।
लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी॥

कोमल चित दीनन पर दाया।
मन बच क्रम मम भक्त अमाया॥

सबहिं मान प्रद आपु अमानी।
भरत प्राण सम मम ते प्रानी॥

विगत काम मम नाम परायन।
शान्ति विरति विनीत मुदितायन॥

शीतलता सरलता मयत्री।
द्विज पद प्रेम धर्म जनयत्री॥

यह सब लक्षण बसहिं जासु उर।
जानेउ तात सन्त सन्तत फुर[1]॥

शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।
परुष[2] बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कञ्ज।
ते सज्जन मम प्राणप्रिय, गुण मन्दिर सुख पुञ्ज॥

सुनहु असन्तन केर स्वभाऊ।
भूलेहु संगति करिय न काऊ॥

तिन कर सङ्ग सदा दुखदाई।
जिमि कपिलहि घालै हरहाई[3]॥

---

१ फुर=सच्चा। २ परुष=कड़ा, कठोर। ३ हरहाई=उजाड़ करने वाली।

खलन हृदय अति ताप विशेखी।
जरहिं सदा पर सम्पति देखी॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई।
हर्षहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन।
निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बैर अकारण सब काहू सों।
जो करु हित अनहित[1] ताहू सों॥
झूठै लेना झूठै देना।
झूठै भोजन झूठ चबैना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा।
खाँहिं महा अहि[2] हृदय कठोरा॥
पर द्रोही परदाररत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद॥
लोभै ओढ़न लोभै डासन।
शिश्नोदर पर यमपुर त्रासन॥
काहू की जो सुनहिं बड़ाई।
श्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू की देखहिं विपती।
सुखी होहिं मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ-रत परिवार विरोधी।
लम्पट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं।
आपु गये अरु घालहिं आनहिं॥

---

१ अनहित = बैर। २ अहि = साँप।



करहिं मोह वश द्रोह परावा।
सन्त सङ्ग हरि भक्ति न भावा॥
अवगुण सिंधु मन्द मति कामी।
वेद विदूषक पर धन स्वामी॥
विप्र द्रोह पर द्रोह विशेषी।
दम्भ कपट जिय धरे सुवेषी॥
ऐसे अधम मनुष्य खल, कृत युग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइ हैं कलियुग माहिं॥
परहित सरिस[1] धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्णय सकल पुराण वेदकर।
कहेउ तात जानहिं कोविद नर॥
नर शरीर धरि जो पर पीरा।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
करहिं मोहवश नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नशाना॥
काल रूप मैं तिन कर ताता।
शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता॥
अस विचार जो परम सयाने।
भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने॥
त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक।
भजैं मोहिं सुर नर मुनि नायक॥
सन्त असन्तन के गुण भाखे।
ते न परहिं भव जिन लखि राखे॥

---

१ सरिस = समान।

सुनहु तात मायाकृत, गुण अरु दोष अनेक।
गुण यह उभय न देखिये, देखिय सो अविवेक॥

७—बरवै-रामायण

इस ग्रन्थ में ६६ बरवै-छन्दों में सात काण्डों ही में रामयश का वर्णन किया है। उदाहरण—

(बालकाण्ड)

केस-मुकुत सखि मरकत[1] मनिमय होत;
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥

(अयोध्याकाण्ड)

राजभवन सुख बिलसत सिय सँग राम;
विपिन[2] चले तजि राज, सुबिधि बड़ बाम।

(अरण्य काण्ड)

हेमलता सिय मूरति मृदु मुसुकाइ;
हेम[3] हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि देखाइ।

(किष्किन्धा काण्ड)

कुजन-पाल गुन-वर्जित, अकुल अनाथ;
कहहु कृपानिधि राउर कस गुनगाथ।

(सुन्दर काण्ड)

राम-सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार;
असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार।

(लङ्का काण्ड)

विविध वाहिनी बिलसति[4] सहित अनंत;
जलधि सरिस को कहै राम भगवन्त।

---

१ मरकत = पन्ना। २ विपिन = वन में। ३ हेम = सोना। ४ बिलसति = शोभापाती हैं।

(उत्तर काण्ड)

जनम जनम जहँ जहँ तनु तुलसिहि देहु;
तहँ तहँ राम निवाहिब[1] नाम सनेहु।

(८) रामलला नहछू

२० सोहर छन्दों में यह छोटा सा ग्रन्थ श्रीरामचन्द्रजी के यज्ञोपवीत के समय के लिए लिखा गया जान पड़ता है। उदाहरणः—

आदि सारदा गनपति गौर मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो॥
जेहि गाये सिधि होइ परम निधि[2] पाइय हो।
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो॥

× × ×

नख काटत मुसकाहिं बरनि नहिं जातहि हो।
पदुम पराग मनिमानहुँ कोमल गातहि हो॥
जावक[3] रुचि क अँगुरियन्ह मृदुल सुठारी हो।
प्रभु कर चरन पछालि तौ अति सुकुमारी हो॥

(९) पार्वती मङ्गल

इस ग्रन्थ में शिव पार्वती का बिवाह वर्णन है। १४८ तुक सोहर छन्द के और १६ अन्य छन्द हैं। उदाहरणः—

विनइ[4] गुरुहिं, गुनिगनहि, गिरिहि, गन नाथहि।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि॥
गावउँ, गौरि-गिरीस-विवाह सुहावन।
पाप नसावन, पावन, मुनि-मन-भावन॥

---

१ निवाहिब = निवाहेगा। २ निधि = खज़ाना, कोष। ३ जावक = महावर। ४ विनइ = विनती करके।

कबित रीति नहिं जानउँ, कवि न कहावउँ ।
शंकर-चरित-सुसरित[1] मनहुँ अन्हवावउँ[2] ॥
पर अपवाद[3]—विवाद—विदूषित—बानिहि ।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस[4]-भवानिहि ॥

(१०) जानकी-मङ्गल

इस ग्रन्थ में श्रीराम जानकीजी का विवाह-वर्णन है। १९२ तुक सोहर छन्द के और २४ अन्य छन्द हैं। उदाहरण:—

देस सुहावन पावन वेद बखानिय ।
भूमि तिलक सम तिरहुत[5] त्रिभुवन जानिय ॥

तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर ।
सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुखसागर ॥

जनि छोह[6] छांडब विनय सुनि रघुबीर बहु बिनती करी ।
मिलि भेटि सहित सनेह फिरेउ विदेह मन धीरज धरी ॥
सो समौ कहत न बनत कछु सब भुवन भरि करुना रहे ।
तब कीन्ह कौशलपति पयान निसान बाजे गहगहे ॥

(११) श्रीकृष्ण गीतावली

इस ग्रन्थ में ६१ पदों में श्रीकृष्ण भगवान् का वर्णन किया गया है। उदाहरण:—

---

१ सुसरित = अच्छी नदी । २ अन्हवावउँ = स्नान करवाता हूँ ।
३ अपवाद = अपकीर्ति, प्रतिवाद, निन्दा । ४ भवेस = महादेव, शिव ।
५ तिरहुत = मिथिला प्रदेश, वह प्रदेश जिसके अन्तर्गत आजकल मुजफ्फरपुर और दरभंगा है । ६ छोह = ममता, प्रेम, दया, कृपा ।



(राग मलार)

ऊधो हैं बड़े, कहैं सोइ कीजै।
अलि, पहिचानि प्रेम की परिमिति[1] उतरु फेरि नहिं दीज ॥
जननी जनक जरठ[2] जाने जन परिजन लोगु न छीजै।
दै पठयो पहिलो बिढ़तो ब्रज सादर सिर धरि लीजै ॥
कंस मारि जदुबंस सुखी कियो, स्रवन सुजस सुनि जीजै।
तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई[3] ज्यों ज्यों कामरि भीजै ॥

(राग केदारा)

गोकुल प्रीति नित नई जानि।
जाइ अनत[4] सुनाइ मधुकर ज्ञान गिरा पुरानि ॥
मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ निरगुन-खानि।
नवल नन्दकुमार के ब्रज सगुन सुजस बखानि ॥
तू जो हम आदर्‌यो सो तो नव कमल की कानि।
तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि[5] ॥

(१२) वैराग्य-संदीपिनी

६२ छंदों का यह ग्रन्थ तीन प्रकाशों में दोहा चौपाइयों में सन्त महात्माओं के लक्षण, प्रशंसा और वैराग्य के आकर्षक वर्णनों से भरपूर है। उदाहरण:—

तुलसी मिटै न मोह तम, किए कोटि गुनग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रवि-कुल-रवि राम ॥
एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
राम—रूप—स्वाती—जलद[6], चातक तुलसीदास ॥

---

१ परिमिति = मर्यादा। २ जरठ = जीर्ण, वृद्ध। ३ गरुई = वज़नदार। ४ अनत = दूसरी जगह। ५ बानि = आदत, लत। ६ जलद = जल देने वाला, मेघ, बादल।

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बाँचैं सन्तजन, केवल सान्ति अधार॥

(१३) राम-सतसई

भक्ति, प्रेम, ज्ञान और उपदेश-प्रद सात सौ दोहे इस ग्रन्थ में हैं। उदाहरण:—

जहाँ राम तहँ काम नहिं; जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि-रजनी[1] इक ठाम॥
काम, क्रोध, मद, लोभ की, जौलों मन में खान।
तौ लों पण्डित मूरखौ, तुलसी एक समान॥
आवत ही हर्षै नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन[2] बरसे मेह॥

(१४) छप्पय-रामायण

इस ग्रन्थ में छप्पय-छन्दों में श्रीरामयश का वर्णन किया है।

उदाहरण:—

कतहुँ विटप भूधर[3] उपारि[4] अरि सैन्य बरष्षत;
कतहुँ बाजि[5] सों बाजि मर्दि गजराज करष्षत।
चरण चोट चटकज चोंकोट अरि उर सिर बज्जत,
विकट कटक विहरत वीर वारिद जिमि गज्जत।
लङ्गूर लपेटत पटकि महिं, जयति राम जय उच्चरत[6]।
तुलसीस पवन-नन्दन अटल, जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

---

१ रजनी = रात। २ कंचन = सोना। ३ भूधर = पहाड़। ४ उपारि = उखाड़ कर। ५ बाजि = घोड़ा। ६ उच्चरत = बोलते हैं।



(१६) राम-शलाका

उदाहरण:—

राम राज्य राजत सकल, धर्म-निरत[1] नर-नारि;
राग न रोष न दोष कछु, सुलभ पदारथ चारि[2]।

(२०) सङ्कट मोचन

इसमें सङ्कट-मोचनार्थ आठ सवैया हनूमानजी की स्तुति के हैं। उदाहरण:—

बाल समय रवि भक्ष कियो तब तीनहु लोक भयो अँधियारो।
तेहि ते त्रास[3] भई सब को अति सङ्कट काहु ते जात न टारो॥
देवन आनि करी विनती तब छाँड़ि दियो रवि कष्ट निवारो।
को नहिं जानत है जग में कपि! सङ्कट-मोचन नाम तिहारो॥

(२१) हनुमान-बाहुक

कवितावली का अन्तिम अंश हनुमान-बाहुक के नाम से प्रसिद्ध है; इस ग्रन्थ में हनुमानजी की स्तुति तथा प्रार्थनाएँ हैं। उदाहरण:—

बालपन सूधे मन राम सनमुख भयो,
राम नाम लेत, माँगि खात टूकटाक हौं;
परयौ लोक रीति में, पुनीत प्रीति रामराय,
मोह बस बैठो तोर तरकि तराक हौं।
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो,
अंजनीकुमार, सोध्यो रामपानि पाक[4] हौं;

---

१ निरत = तत्पर। २ पदारथ चारि = चारों पदार्थ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। ३ त्रास = भय। ४ पाक = शुद्ध।

तुलसी गुसाईं भयो, भौंड़े[1] दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं।

(२२) छंदावली

इस ग्रन्थ में श्रीरामचन्द्रजी का यश छोटे छोटे ललित छन्दों में वर्णन किया है। उदाहरण:—

(सुन्दरी छन्द)

राजत[2] मेचक[3] अङ्ग महा छवि,
गावत हैं श्रुति सेस सबै कवि।
बाल विनोदक देव करैं कल,
जो सुनते जरि जाय महामल[4] ॥

(१५) झूलना-रामायण (१६) कुण्डलिया रामायण (१७) रोला-रामायण और (१८) कड़खा-रामायण की प्रतियाँ प्राप्त नहीं हो सकी हैं अतः इनकी कविताओं के उदाहरण नहीं दिए जा सके हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी की अवस्था किन्हीं ने १२० वर्ष और किन्हींने १०० वर्ष मानी है, किन्तु मेरी सम्मति में उनकी अवस्था ६१ वर्ष से अधिक, जैसा कि निम्नलिखित दोहे पर विचार करने से सिद्ध होती है, न रही होगी। यथा:—

संवत् सोरह सौ असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥

गोस्वामीजी केवल बुन्देलखण्ड ही के नहीं प्रत्युत: हिन्दू-धर्म, भारतवर्ष और समस्त संसार के अमूल्य आभूषण तथा उज्ज्वल

---

१ भौंड़े = बुरे। २ राजत = अच्छा मालूम होता है। ३ मेचक = श्याम। ४ महामल = घोर पाप।

रत्न हैं। आपके लोक-प्रिय ग्रन्थ रामचरित-मानस से साधारणतः जन समुदाय का और विशेषतः हिन्दुओं का जितना उपकार हुआ है उतना अन्य किसी भी कवि की रचना से नहीं हुआ है। केवल बारहखड़ी पढ़े हुओं से लेकर महामहोपाध्यायों तक आपके इस ग्रन्थ का समानता से आदर होता है। भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसा हिन्दू घर हो जहाँ इस ग्रन्थ-रत्न की एक प्रति न हो। अस्तु

गोस्वामीजी को कथा प्रासङ्गिक काव्य की दृष्टि से सबसे प्रथम, और हिन्दी कविता के आचार्य्यत्व की दृष्टि से कवीन्द्र केशव के पश्चात् ही स्थान मिलता है। आपकी अमर कृतियाँ हिन्दी-साहित्य की स्थायी और अद्वितीय सम्पत्ति हैं।

आपकी विशेषताएँ

आपकी कविताओं की यह विशेषता है कि उसे साधारण पढ़े-लिखे लोग भी समझ लेते हैं और विद्वानों का तो कहना ही क्या है। जितना ही मनन करते जाइए उतना ही आनन्द मिलता जावेगा, कथानक का सम्बन्ध-निर्वाह आपने बड़ी ही सफलता के साथ किया है। आपने अपने ग्रन्थों में अनेकानेक ग्रन्थों का उपदेश निचोड़ कर भर दिया है। आपके ग्रन्थों को भली प्रकार मनन कर लेने से जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा शान्त हो जा सकती है। केवल भारतवर्ष ही नहीं किन्तु संसार आपकी असीम कवित्वशक्ति को सश्रद्धा स्वीकार करता है और जब तक इस पृथ्वी पर आर्य्य-सभ्यता विद्यमान है तब तक सब ही आपका उत्तरोत्तर ऐसा ही सम्मान करते रहेंगे।

२—बलभद्र मिश्र



कवीन्द्र केशवदास मिश्र के अग्रज महाकवि बलभद्र मिश्र, जिनका कि जन्म सं० १६०० वि० के लगभग ओरछे में हुआ था, बड़े ही अच्छे कवि हुए हैं। आपका कविता काल सं० १६१८ वि० से प्रारम्भ होता है। आपका बाल्यावस्था ही में ऐसा प्रबल पाण्डित्य हो गया था कि आप बाल्यकाल ही में महाराज मधुकुरशाह ओरछा-नरेश को अष्टादश पुराण सुना सके थे, आपने (१) शिखनख (२) भागवत भाष्य (३) बलभद्री व्याकरण (४) हनुमन्नाटक टीका (५) गोवर्द्धन सतसई (६) भगवत पुराण (७) दूषणविचार आदि ग्रन्थों की रचना की थी। आपका 'नखशिख' का वर्णन बड़ा ही उत्तम है, आपके वंशज अब भी ग्राम चिरपुरा (झाँसी) में विद्यमान हैं। आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

माँग का वर्णन करते हुए आपने 'शिखनख' नामक ग्रंथ में आप लिखते हैं :—

तम[1] की विपिन में सरल पंथ सात्विक को,
कैधौं नीलगिरि पर गङ्गा जू की धार है।

---

१ तम=अँधेरा, सांख्य में प्रकृति का तीसरा गुण जिस से काम, क्रोध, हिंसा आदि होती है।

कैधों बनवारी बीच राजत रजत रेख,
कीनो चन्द्रका अन्धकार को प्रहार है ॥
नापत सिंगार भूमि डोरी हास्य रस की कै,
बलभद्र कीरति की लीक सुकुमार है।
पय की असार घनसार[1] की असार माँग
अमृत की आपगा[2] उपाई करतार है ॥

इसी में नासिका का भी वर्णन देखिए :—

सोभा को सकेलि[3] ऊँची बेलि बाँधी बलभद्र
राख्यो समलोचन कुरंगन[4] को रोस है।
दीपति को दीपति कि मुख द्वीप को सुमेरु
मृदु मुख सारस की सिफाकन्द जोस है ॥
कलप तरोवर की कली कैधों गंधफली,
उपमा अनूपम को विविध निसोस है।
तिल को सुमन है कि नासिका तरुनि तेरी,
सुरन की सरना कि सौरभ[5] को कोस[6] है ॥

बालों का वर्णन करते हुए देखिए आप लिखते हैं:—

मरकत[7] सूत कैधों पन्नग[8] के पूत अति,
राजत अभूत तमराज कैसे तार हैं।
मखतूल[9] गुण ग्राम सोभित सरस स्याम,
काम मृग कानन कै, कोहू के कुमार हैं ॥

---

१ घनसार = कपूर । २ आपगा = नदी । ३ सकेलि = एकत्रित करके । ४ कुरंगन = हिरनों का । ५ सौरभ = सुगंध । ६ कोस = कोष, ख़ज़ाना । ७ मरकत = पन्ना, हरिन्मणि । ८ पन्नग = साँप, सर्प, नाग । ९ मखतूल = काला रेशम ।

कोप की किरनि कै जलज नल नील तंत,
उपमा अनन्त चारु चँवर शृङ्गार हैं।
कारे सटकारे भींजे सोंधे सुगन्ध बास,
ऐसे 'बलभद्र' नव बाला तेरे बार हैं॥

सम्पूर्ण शरीर का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं:—

अलप[1] अधर[2] कटि[3] सुरवा[4] अलप ऐन,
सुनत विसेख बैन बीना पिक कीर के;
सुभर कपोल खरे सुभर सुभाय उर,
सुभर नितम्ब[5] मन मोहे मुनि धीर के।
निर्मल दसन[6] नैन नख माँग बलभद्र
मानो फैन सोहत सुरसरी के नीर के;
स्याम पाटी तारे रोम राजी कुच अग्र तेरे,
सोरह सिंगार ये स्वभाविक सरीर के।

आप के अन्य ग्रंथ प्राप्त नहीं हो सके हैं फिर भी आप को अमर बनाए रखने के लिए आपकी प्रस्तुत रचनाएं ही पर्याप्त हैं। यदि आप के सब ग्रन्थ मिल गए होते तो आपके सम्बन्ध में और भी विशेष रूप से लिखा जाता। अन्वेषण किया जा रहा है तब तक पाठक आपकी इतनी ही रचनाओं पर संतोष करें। इतना तो, प्रस्तुत रचनाओं से, मानना ही पड़ेगा कि बलभद्रजी का स्थान कविता-जगत में तुलसी और केशव से नीचा नहीं है और इस काल के महाकवियों में उनकी गणना की जाती है।

---

१ अलप = अल्प। २ अधर = नीचे का ओठ। ३ कटि = कमर। ४ सुरवा = एड़ी के ऊपर का घेरा। ५ नितम्ब = कमर का पिछला उभरा हुआ भाग, चूतड़। ६ दसन = दांत।



धर्मादर्शों को जगत, लै जिनसे उपदेश;
दानी गणेशादे यही, हैं मधुशाह नरेश। 'शङ्कर'

३—महाराज मधुकरशाह



रछा नरेश महाराज मधुकरशाह का जन्म ओरछा में सं० १६०० वि० के लगभग हुआ था। महाराजा भारतीचन्द प्रथम से आपको सं० १६२१ वि० में ओरछा राज-सिंहासन् प्राप्त हुआ था और आपने सं० १६२१ वि० से १६५९ वि० तक ओरछा का राज किया था। आपका कविता-काल सं० १६३० वि० से प्रारम्भ होता है। आप बड़े ही भक्त और साहसी राजा थे, आपके सम्बन्ध की अनेकानेक किम्बदन्तियाँ बुन्देलखण्ड के गाँव-गाँव में प्रचलित हैं। आप कृष्णोपासक और व्यासजी के शिष्य थे। आपकी रानी गणेशदे रामोपासिका थीं, और अयोध्या से वे ही श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति लाई थीं। उन ही के आग्रह से ओरछे में विशाल मन्दिर बनवाए गए थे जो कि अब भी विद्यमान हैं। इस मन्दिर और मूर्ति के सम्बन्ध में अनेकानेक जन-श्रुतियाँ हैं; और उनसे महारानी साहिबा की धर्मपरायणता और भक्ति का खासा परिचय मिलता है। आप मानसिक पूजन करते थे।

महाराजा मधुकरशाह तो अपने धर्म और उपासना में इतने दृढ़ थे कि कठिन से कठिन अवसर आने पर भी उन्होंने उसे नहीं छोड़ा था। अनेक घटनाओं में से एक ऐतिहासिक घटना यह है कि बादशाह अकबर के दरबार में एक बार महाराज शाह

आगरा गए थे, और भी भारतवर्ष के प्रमुख-प्रमुख राजे-महाराजे उसमें सम्मिलित हुए थे। अकबर बादशाह ने एक दिन यह घोषणा की कि उनके दरबार में तिलक लगाकर कोई न आया करे। दूसरे दिन और सब राजे-महाराजे तो बिना चंदन-तिलक लगाए ही दरबार में गए किन्तु महाराज मधुकुरशाह तिलक लगाकर ही दरबार में पहुँचे। पहिले तो बादशाह अकबर आप पर बहुत ही कुपित हुए किन्तु आपकी स्पष्ट-वादिता और धर्म-दृढ़ता पर प्रसन्न हो आपकी प्रशंसा करने लगे, और कहने लगे कि सच-मुच ही इस दरबार में सच्चे तिलकधारी (टिकैत) आप ही हैं, अतः आज से यह तिलक 'मधुकुरशाही' तिलक के नाम से विख्यात होगा। मैंने तो केवल साहस की परीक्षा की थी। मुझे इसमें बिल्कुल आपत्ति नहीं है कि कोई तिलक लगाकर दरबार में आवे—इत्यादि। उपरलिखित अवसर का एक प्राचीन कवित्त भी प्रचलित है जिसे यहाँ लिख देना अनुपयुक्त न होगा।

हुकुम दियो है बादशाह ने महीपन कों,
राजा, राव, राना, सो प्रमान लेखियतु है;
चंदन चढ़ायो कहूँ देवपद बंदन को,
दै हों सिर दाग जहाँ रेखा रेखियतु है।
सूनों कर गये भाल, छोर छोर कण्ठमाल,
दूसरो दिनेस और कौन देखियतु है;
सोहत टिकैत मधुसाह अनियारो इमि,
नागन के बीच मनियारो पेखियतु है।

इत्यादि, ऐसी कितनी ही मनोरंजक घटनाएँ आपके सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। आपको साहित्य और संगीत दोनों ही का शौक़ था। महाकवि बलभद्र, कवीन्द्र केशव आपके दरबारी कवि थे,

आप स्वयम् भी अच्छी कविता करते थे, आपकी पर्याप्त संख्या में रचनाएँ राजकीय पुस्तकालय में विद्यमान हैं। आपके किसी ग्रंथ का शोध मुझे नहीं मिल सका है। आपकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

भक्त बिन किन अपमान सहौ।

कहा कहा न असाधन कीन्हौ हर खल धर्म रहौ॥
अधम राज मधु माथे लै रथ सो जड़ भरथ न हौ।
मत्त सभा कौरवन विदुरसों कहा कहा न कहौ॥
पट झटकत द्रोपदी न मटकी हरिको सरण चहौ।
सरणागत आरत गजपति कौ आपुन चक्र गहौ॥
हा हरनाथ पुकारत आरत कौन ओर निबहौ।
व्यास बचन सुन मधुकरशाहे भकतन शरण लहौ॥

× × ×

ओड़छौ बृन्दावन सौ गाँव।

गोबरधन सुख-सील पहरिया जहाँ चरत तृन गाय॥
जिनकी पद-रज उड़त शीस पर मुक्त-मुक्त हो जायँ।
सप्तधार मिल बहत वैत्रवे जमना-जल उनमान॥
नारी नर सब होत पवित्र कर कर के स्नान।
सो थल तुंगारण्य बखानो ब्रह्मा वेदन गायौ॥
सो थल दियौ नृपति मधुकरकौ श्रीस्वामी हरदास बतायौ।

४—कवीन्द्र केशवदास मिश्र



न्दी भाषा के प्रथमाचार्य्य कवीन्द्र केशवदास मिश्र ओरछा (बुन्देलखण्ड) का जन्म सं० १६१८ वि० के चैत्रमास में ओरछे में हुआ था। आप सनाढ्य ब्राह्मण तथा भारद्वाज गोत्रीय मिश्र थे। आपके पितामह पं० कृष्णदत्तजी मिश्र को महाराज रुद्रप्रताप ओरछा-नरेश ने राज-गुरू तथा राज-पण्डित मानकर पौराणिक वृत्ति दी थी। तिनके पुत्र अगाध पाण्डित्य से विभूषित शीघ्रबोध के रचयिता पं० काशीनाथजी मिश्र महाराज मधुकरशाह के राज-गुरू और पण्डित थे। आपके समय तक आपके‡ वंश में संस्कृत भाषा का इतना प्रचार था कि आपके कुल के दास तक संस्कृत भाषा ही में सम्भाषण करते थे। आपके वंश का विशेष विवरण पाठक केशवरचित 'कविप्रिया' या 'सुकवि-सरोज'* (प्रथम भाग) में देखने की कृपा करें।

आप तीन भाई थे (१) बलभद्र (२) केशवदास और (३) कल्याण और तीनों ही भाई अच्छे कवि थे।

---

‡ भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्द-मति, तिहि कुल केशवदास।

(कविप्रिया) ॥१७॥

* 'सुकवि-सरोज' (प्रथम-भाग) श्री सनाढ्यादर्श-ग्रन्थ-माला टीकमगढ़ से १) में मिल सकता है। —ले०।

कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र संस्कृत-साहित्य और भाषा को अच्छी प्रकार जानते थे; किन्तु अपनी कुशाग्र बुद्धि से आपने यह अनुभव किया कि सर्व साधारण की भाषा की उन्नति करने से ही जन साधारण की मनोवृत्तियों का उत्थान हो सकता है, और इसी भाव से प्रेरित होकर आपने हिन्दी-भाषा रूपी नवीन क्षेत्र में पदार्पण किया था। आपका कविता काल सं० १६३० वि० से प्रारम्भ होता है।

हिन्दी-भाषा की कविता प्रारम्भ करते समय जिस प्रकार कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी को—

भाषा भणित मोर मति थोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥

लिखकर अपने हृदय का उद्गार प्रदर्शित करना पड़ा था। उसी प्रकार ही कवीन्द्र केशव के उपरिलिखित दोहे से भाषा की कविता प्रारम्भ करने में उनका संकोच भली प्रकार झलकता है। किन्तु आपने हिन्दी-संसार में उतर कर जितनी ख्याति और सफलता प्राप्त की है उतनी ही संस्कृत भाषा की कविता करके आप प्राप्त कर सकते, इसमें संशय है। आपने अपने संस्कृत भाषा के विशाल संचित परिज्ञान को हिन्दी-भाषा के साँचे में ढाल कर तत्कालीन जनता की अभिरुचि के अनुकूल बना दिया था। यही कारण है कि आप इस क्षेत्र में कवि-कुल-गुरु श्री कालिदासवत् भाषा काव्य साहित्य-शास्त्र के सश्रद्धा प्रथम आचार्य्य माने और पूजे जाते हैं। और यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि कविता की उत्तमता के कारण जितना मान कवीन्द्र केशव का हुआ है उतना किसी और कवि का नहीं हुआ है। आप महाराजा इन्द्रजीतसिंह के तथा राज्य वंश के राज्यगुरु,

मन्त्री, कवि, मित्र, मुसाहब आदि सब कुछ ही थे। एक स्थल पर तो आपने यहाँ तक लिखा है कि:—

"भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग।
जा के राज केसौदास राजु सो करत है" ॥

आपकी कवित्वशक्ति वास्तव में इतनी अनूठी और उपज ऐसी उत्तम और समयानुसार होती थी कि जिसे सुनकर सुनने वाले मन्त्रमुग्ध की भाँति रह जाते थे। यहाँ पर आपकी दो एक अति प्रचलित घटनाओं का उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा।

महाराजा इन्द्रजीतसिंह पर अकबर ने एक करोड़ रुपया जुरमाना किया था उसे कवीन्द्र केशव ने आगरा जाकर माफ़ करवा दिया था। कहते हैं कि आपने निम्न लिखित सवैया महाराज वीरबल को सुनाया था :—

पावक, पंछी, पशू, नर, नाग,
नदी, नद, लोक, रचे, दस चारी।
'केशव' देव, अदेव, रचे,
नर देव रचे रचना न निवारी॥
कै बर वीर बली बलवीर,
भयो कृत कृत्य महा ब्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि,
दई करतार दुवौ कर तारी॥

इस को सुनकर महाराज वीरबल इतने प्रसन्न और प्रभावित हुए कि उन्होंने वह एक करोड़ का जुरमाना माफ़ करा दिया और ६ लाख रुपये और आपकी भेंट किए तब कवीन्द्र केशव ने यह यह एक सवैया और कह सुनाया :—



केशवदास के भाल लिख्यो,
विधि रङ्क को अङ्क बनाय सँवारयो।
छोड़े छुट्यो नहिं धोये धुवौ,
बहु तीरथ के जल जाय पखारयो ॥
ह्वै गयो रङ्क ते राउ तहीं,
जब बीर बली बर वीर निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना,
चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो ॥

इन के अतिरिक्त और भी आपकी बहुत सी चमत्कारिक स्फुट कविताएँ हैं, जो बहुधा बुन्देलखण्डीय लोगों की जिह्वा पर रहती हैं और जिनसे बहुत कुछ ऐतिहासिक या उसी प्रकार की अद्भुत घटनाओं का मर्म मिलता है यथा :—

याचक सब भूपति भये रह्यो न कोऊ लैन।
इन्द्रहु को इच्छा भयी, गयो बीरवर दैन ॥

× × ×

इत चम्बल उत नर्मदा, इतै जमुन गढ़ तीस।
ह्वै प्रसन्न कवि केशवै, शाह किये बखशीस ॥

× × ×

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
इस में विरसिंह देव की, सब ने मानी धौंस ॥
—इत्यादि।

सोलहवीं शताब्दी में हिन्दू जाति की दशा बड़ी ही विचित्र और शोचनीय हो रही थी। यावनी शक्ति से हिन्दू बुरी तरह दबे हुए थे। नित्य नये नाना प्रकार के षड्यंत्र उन्हें समूल नष्ट



करने के लिए रचे जा रहे थे, जिनको देख देख कर आपका कोमल हृदय बहुत ही उद्विग्न हो उठा और आपने तत्काल अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर उन षड्यंत्रों पर विजय पाने की युक्ति सोच निकाली, और यही कारण है कि आज भी आपको हिन्दू जाति के स्वाभिमानी और जातीय कवि होने का ऊँचा स्थान प्राप्त है। उन दिनों आपको महात्मा बुद्धदेव की भाँति माध्यमिक मार्ग का अवलम्बन करना ही एकमात्र उपाय सूझ पड़ा। इसी कारण ही से आपने मुग़ल सम्राट् के प्रतिद्वन्दी मधुकुरशाह तथा बीरसिंह देव के राजगुरू और कवि होते हुए भी अकबर के दर्बार से तटस्थ रहना उचित न समझा, और अपनी चातुर्यता से अकबर के दरबार में अपनी खासी पैठ जमा ली, और दर्बार के प्रधान पुरुषों को अपनी सभाचातुर्यता और कविताओं द्वारा ऐसा प्रभावित कर दिया कि वे आपके घनिष्ट मित्र और सच्चे अनुयायी हो गए—अर्थात् महाराज बीरबल, टोडरमल, खानखाना, फ़ैजी, अबुलफज़ल, और महाराज मानसिंह आदि सब ही आपका श्रद्धापूर्वक सन्मान करते थे।

ओरछा राज्य-वंश की भी स्थित उन दिनों बड़ी ही विचित्र थी। राज्य-वंश के कुछ लोग जैसे महाराजा रामशाह, आदि तो अकबर बादशाह के प्रभाव से प्रभावित होकर उसकी ओर झुक रहे थे और कुछ लोग जैसे महाराजा श्रीवीरसिंह देव (प्रथम) अकबर के परम विरोधी हो उसे चुनौती दे रहे थे। और उन दिनों अकबर की कराल वक्र दृष्टि हिन्दू-पति महाराणा प्रतापसिंह और ओरछा-नरेश महाराजा वीरसिंहदेव ही पर थी। वह चाहता था कि अन्य राजपूतों की भाँति या तो इन्हें दासत्व शृंखला में बाँध लिया जावे या फिर इन्हें समूल ही ध्वंस करके

निश्चिन्तता की श्वांस ली जावे। ऐसी परिस्थिति में कवीन्द्र केशव के लिए यह कितनी कठिन समस्या थी कि वे ओरछे में किसके आश्रित होकर रहते। किन्तु यह आपकी बुद्धि का जाज्वल्यमान प्रमाण है कि आप अपनी बुद्धि के बल पर समान रूप ही से सबके कृपा-पात्र बने रहे, और अन्त समय तक महाराजा रामशाह, महाराजा वीरसिंह देव और स्वयम् अकबर के दर्बार के बहुसम्मानास्पद सदस्य बनकर सदैव हिन्दी-हित-साधन करते रहे।

सोलहवीं शताब्दि में साधारणतः हिन्दू-जनता की अभिरुचि और विचार जाह्नवी की सहस्र धाराओं की भाँति हो रही थी। कुछ तो मुग़ल दर्बार से मोहित हो रास-विलास की रुचि से प्रेरित थे, कुछ धर्म रुचि में मग्न थे, कुछ सांसारिक झंझटों से ऊब कर विरक्त चित्त हो रहे थे, कुछ साहित्य सेवा में निमग्न थे, कुछ प्रतिहिंसा के भावों से प्रेरित थे और कुछ दासोऽहं का पाठ पढ़ रहे थे।

ऐसी अवस्था में कवीन्द्र केशवदासजी ने विचार किया कि अब ऐसे साहित्य की सृष्टि की जावे जिससे सभी के विचारों की तृप्ति हो जावे और आख़िरकार आपने वैसा ही किया और अपने अभीष्ट को अन्त समय तक बड़ी ही ख़ूबी से निबाहा।

अब हम क्रमशः आपके प्रत्येक ग्रन्थ में से आपकी कविताओं के कुछ उदाहरण देते हैं:—

रसिक प्रिया

कवीन्द्र केशव का सर्व प्रथम ग्रन्थ 'रसिक प्रिया' है। यह सं० १६४८ वि० में बना था। यह ग्रन्थ महाराजा इन्द्रजीतसिंह के लिए जिनके प्रति एक स्थल पर आपने लिखा है—

"भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग,
जाके राज्य केसौदास राजु सो करतु है।"

लिखा था। रसिक प्रिया में राजधानी तथा राजवंश का वर्णन करते हुए ग्रन्थ-निर्माण का कारण भी लिखा है। इसमें आपने नवरस–नायिका-जाति, नायिका-भेद, चारों प्रकार के दर्शन, वियोग शृङ्गार और चारों वृत्तियों आदि का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ श्रीकृष्ण के अतिहास के वर्णन का एक कवित्त देखिए इसमें अति विह्वलता, हास्य, कण्ठ गद्गद्ता आदि का समिश्रण करके कितना कोमल वर्णन किया है:—

गिरि गिरि उठि उठि रीझ रीझ लागे कण्ठ,
बीच बीच न्यारे होत छबि न्यारी न्यारी सों।
आपुल में अकुलाइ आधे आधे आखरनि,
आछी आछी बातैं कहैं आछी एक हारी सों॥
सुनत सुहाइ सब समुझि परै न कछू,
कैशौदास की सों दुरै देखो मैं हुस्यारी सों।
तरणि तनूजा तीर, तरवर तर ठाढ़े,
तारी दै दै हँसत कुमार कान्ह प्यारी सों॥

—इत्यादि।

रामचन्द्रिका

आपका दूसरा ग्रन्थ प्रकाण्ड पाण्डित्य से पूर्ण रामचन्द्रिका है। यह ग्रन्थ भी आपने महाराजा इन्द्रजीतसिंह के लिए रामचरित्र वर्णन करते हुए सं० १६५८ वि० में लिखा था, आपके ग्रन्थों में यह ग्रन्थ सर्वोपरि है। कवि की असीम विद्वत्ता का यह सजीव प्रत्यक्ष प्रमाण है। ध्यानपूर्वक इस पुस्तक को पढ़ने से यह जान पड़ता है कि मानो अपने किसी शिष्य को उदाहरण दे देकर कवीन्द्र केशवदासजी

कविता और छन्दों के नियम, रूप और गुण-दोष सिखला रहे हैं। देखिए पहिले प्रकाश में छन्द नं० ८ से १६ तक एकाक्षरी से लेकर अष्टाक्षरी छन्द तक के उदाहरण लिखे हैं और प्रायः समूल ग्रन्थ ही में अलङ्कारों और उपमाओं की भरमार है। और अधिक से अधिक छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने के ध्यान से आप बड़ी ही शीघ्रता से छन्द बदलते गए हैं। दृश्यों और मनोभावों को वर्णन करने की आपकी शैली ही अनूठी है, कल्पना-शक्ति से तो समूल ग्रन्थ भरा पड़ा है, पाण्डित्य-प्रदर्शन की कला में भी आप सिद्धहस्त थे। यद्यपि इस कला के फेर में पड़ने से कहीं कहीं तो आपकी कविता इतनी क्लिष्ट हो गई है कि उसकी प्रतिभा से चकाचौंधित होकर किसी कवि को कहना पड़ा था कि

"देबो न चाहैं बिदाई नरेश तो,
पूँछत केशव की कबिताई।"

एक महाकवि ने सश्रद्धा हास्य के भाव से प्रेरित होकर आपको "कठिन काव्य का विकट पिशाच" कह कर आपका अभिनन्दन किया है। रामचन्द्रिका में अयोध्या का वर्णन, राजसभा का दिक्दर्शन, बाण और रावण का संवाद, धनुष यज्ञ का वृत्तान्त, भरत को पुण्यसलिला भागीरथी से समझवाना, रावण के मन्दिर का वर्णन, मुन्दरी और सीताजी का मिलन, लङ्कादहन का वर्णन, लव-कुश द्वारा विभीषण आदि की समालोचना, सीताजी के अग्नि प्रवेश का वर्णन आदि, ऐसे वर्णन हैं जिनको पढ़कर आपकी असीम विद्वत्ता का मर्म मिलता है। राजसी ठाठ बाट, न्यायनीति, समाजनीति, धर्मनीति और सौन्दर्य-प्रकाशन आदि को जिस उत्तमता से आपने वर्णन किया है वैसा और भी कवि कर सके हैं इसमें सन्देह है। इन वर्णनों की

सफलता के अन्य कारणों के अतिरिक्त यह भी एक मुख्य कारण है कि आप सदैव राजा महाराजाओं ही में रहते थे और स्वयम् भी राजा-महाराजाओं ही की भाँति रहते थे। अस्तु, देखिए महाराजा दशरथ से विश्वामित्रजी श्रीराम लक्ष्मण को माँगने के लिए जब अयोध्या में आते हैं और महाराजा दशरथ उन्हें सादर द्वार से लाकर राज-दरबार में सिंहासन पर बिठलाते हैं उसी समय यश-वर्णन के विचार से एक बन्दीजन के मुँह से कैसे भावपूर्ण वाक्य आप प्रदर्शित करवाते हैं:—

विधि के समान हैं विमानी कृत राज हंस,
विविध विबुध युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातों दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिणा को बल है॥
सागर उजागर को बहु बाहिनी को पति,
छन दान प्रिय कैधौं सूरज अमल है।
सब बिधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भगीरथ पथ-गामी गङ्गा कैसो जल है॥

इस छन्द में कवीन्द्र केशवदासजी ने वास्तव ही में अनेक ऊँचे भावों का समिश्रण कर दिया है। राजा दशरथ को ब्रह्मा, सुमेरु पर्वत, दूसरे दिलीप, सागर और प्रतिक्षण दान करने वाले सूर्य्य की उपमा देकर बन्दीजन के मुख से यह सङ्केत राजा दशरथ को कि विश्वामित्र कुछ माँगने आए हैं दे दिया, और ऋषि को भी यह आश्वासन दे दिया कि वे बड़े दानी के यहाँ पहुँच गए हैं कार्य्य निष्फल न होगा; और ग्रन्थ अवलोकन करने वालों को तथा सुननेवालों को यह प्रबोधन दे दिया कि जिस कवि ने बन्दीजन के मुख से इतनी मार्मिक और ऊँची

बात कहलवाई है वह आ।ग चलकरके तो आनन्द का सागर ही बहा देगा।

सीताजी के अशोक वृक्ष से अङ्गार माँगने पर पल्लवों की ओट में बैठे हुए हनुमानजी श्रीरामनामाङ्कित मुद्रिका डाल देते हैं, उस समय सीता के चित्त में क्या क्या भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और कैसे धीरे धीरे अग्नि कण के आभास से मुद्रिका की ओर सीताजी का ध्यान आकर्षित होता है, इस सजीव वर्णन को देखिए:—

(चामर छन्द)

देखि देखि कै अशोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहि आगि तैं जु अङ्ग आगि ह्वै रह्यो॥
ठौर पाय पौन पूत डारि मुद्रिका दई।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई॥

(तोमर छंद)

जब लगी सियरी[1] हाथ।
यह आग कैसी, नाथ॥
यह कह्यौ लखि तब ताहि।
मन जटित मुँदरी आहि॥
जब बाँचि देख्यौ नाँउ।
मन परघो संभ्रम[2] भाउ॥
आबाल ते[3] रघुनाथ।
वह धरी[4] अपने हाथ॥

---

१ सियरी = ठण्डी। २ संभ्रम = अधिक भ्रम। ३ आबाल ते = बचपन से। ४ धरी = पहिनी।



बिछुरी सी कौन उपाउ।
केहि आनियो[1] यहि ठाँउ[2] ॥
सुधि लहौं कौन उपाय।
अब काहि पूँछन जाउ ॥
चहुँ ओर चितै सत्रास[3]।
अवलोकियो[4] आकास ॥
तहँ साख बैठो नीठि[5]।
इक परचो बानर दीठि[6] ॥

× × ×

सुखदा[7], सिखदा[8], अर्थदा[9], यशदा[10] रस दातारि[11]।
रामचन्द्र की मुद्रिका किधौं परम गुरु नारि ॥
बहु वर्णा[12] सहज प्रिया, तमगुण हरा[13] प्रमान।
जग मारग[14] दरशावनी, सूरज किरण समान ॥

---

१ केहि आनियो = कौन ले आया है। २ यहि ठाँउ = यहाँ पर। ३ सत्रास = डर से। ४ अवलोकियो = देखा। ५ नीठि = कठिनता से। ६ दीठि = दिखलाई। ७ सुखदा = सुख देने वाली। ८ सिखदा = शिक्षा देने वाली। ९ अर्थदा = प्रयोजन की सिद्ध करने वाली। १० यशदा = यश देने वाली। ११ रसदातारि = रस (दाम्पत्ति सुख) देने वाली। १२ बहुवर्णा = कई रङ्ग वाली (सूर्य किरण के रङ्गों से तात्पर्य्य है), कई अक्षरों वाली (अंगूठी पर 'श्रीरामोजयति' ये छः अक्षर लिखे थे।) १३ तमगुणहरा = अँधेरा दूर करने वाली, दुःख दूर करने वाली। १४ जगमारग दरशावनी = संसार के कार्यों का मार्ग दिखलाने वाली (पति पत्नी का स्मरण करा करके प्रेम सम्बन्ध दृढ़ करने वाली।)



श्री[1] पुर मैं बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति[2]।
कहि सुँदरी अब तियन की, को करि है परतीति ॥
—इत्यादि ।

सीताजी के अग्नि-प्रवेश वर्णन में भी आपके असीम गूढ़ विद्वत्व तथा अभूतपूर्व कल्पनाशक्ति का जो परिचय मिलता है वह वर्णनातीत है। देखिए:—

सवर्षा सबै अङ्ग शृङ्गार सोहैं।
विलोके रमा देव देवी विमोहैं ॥

पिता अङ्क ज्यों कन्यका[3] शुभ्र गीता[4]।
लसै अग्नि के अङ्क[5] यों शुद्ध सीता ॥

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी[6]।
कि संग्राम की भूमि में चण्डिका सी ॥

मनौ रत्न सिंहासनस्था शची[7] है।
किधौं रागनी राग[8] पूरे रची है[9] ॥

गिरा[10] पूर[11] में है पयो देवता[12] सी।
किधौं कंज की मंजु शोभा प्रकासी ॥

× × × ×

---

१ श्री = राज्य श्री। २ अनीति = अन्याय किया, त्याग कर धोखा दिया। ३ कन्यका = पुत्री। ४ शुभ्रगीता = शुद्धाचरणवाली। ५ अङ्क = गोद में। ६ पुत्रिका सी = पुतली सी। ७ शची = इन्द्राणी। ८ राग = अनुराग। ९ रची है = रंगी है। १० गिरा = सरस्वती। ११ पूर = समूह। (गिरा पूर = सरस्वती नदी का जल समूह)। १२ पयो देवता = जलदेवी।

आसावरी[1] मानिक कुम्भ सोभै,
अशोक लग्ना[2] बन-देवता सी ।
पालास-माला-कुसुमालि मध्ये,
बसन्त-लक्ष्मी सुभ लच्छना सी ॥
आरक्त पत्रा[3] सुभ चित्र-पुत्री[4],
मनो विराजै अति चारु बेखा ।
संपूर्ण सिन्दूर प्रभास कैधौं,
गणेस भालस्थल चन्द्र-रेखा[5] ॥

कहाँ तक कहा जावे आपका यह समूल ग्रंथ इसी प्रकार की प्रकाण्ड पाण्डित्य पूर्ण सुकविताओं से भरा पड़ा है ।

कवि-प्रिया

आपका तीसरा ग्रन्थ है—कवि-प्रिया । यह ग्रन्थ आपने वि० सं० १६५८ में रचा था । यह ग्रन्थ भी आपने महाराजा इन्द्रजीतसिंह के प्रीत्यर्थ उनकी प्रीतिपात्री और अपनी शिष्या प्रवीणराय के लिए रचा था। इस ग्रन्थ में सत्रह अध्याय हैं, इसमें आपने कविता के दूषण कवियों के गुण दोष, कविता की जाँच, अलङ्कार आदि और अन्त में चित्र काव्य लिखा है । इसमें ओरछे के राज-वंश का तथा अपने वंश का आपने विस्तृत विवरण लिखा है । यह ग्रन्थ आपका बड़ा ही उपयोगी और उत्कृष्ट है । इस ग्रन्थ को भली प्रकार पढ़ लेने से किसी दूसरे आचार्य्य की शिष्यता करने की आवश्यकता नहीं रह जाती । इसी ग्रन्थ के कारण आप भाषा साहित्य के प्रथम आचार्य्य माने गए हैं । इसकी कविता के कुछ उदाहरण देखिए:—

---

१ आसावरी = रागिनी विशेष । २ लग्ना = बैठी हुई । ३ आरक्त पत्रा = लाल पत्तों से सजाई हुई । ४ चित्र-पुत्री = पुतली । ५ चन्द्र-रेखा = चन्द्रमा की कला ।

सन्देहालङ्कार में शीशफूल का वर्णन करते हुए आप कहते हैं:—

कैधौं श्यामवन पै प्रकाश है विभाकर को,
कैधौं अँधियारी रैन मध्य आभा इन्द की।
कैधौं गुरु गिरि के शिखर चढ़ वारयो दीप,
यमुना जल पै किधौं भाँई अरविन्द की॥
काली के कपाल पै परम पद कैशौदास,
कैधौं शेष शीश पै मनि है फनिन्द[1] की।
तेरे शीश शीशफूल शोभा इम देत जैसे,
माननी के पाँय परै मूरत गुविन्द की॥

मुख-मण्डल का वर्णन करते हुए आप कहते हैं:—

अमल मुकुर[2] सो वर्णिये, कौमल कमल समान।
अकलङ्कित[3] मुख वरणिये, चारु[4] चन्द परिमान॥

(कवित्त)

ग्रहनि में कीन्हों गेह सुरन में देख्यो देह,
शिव सो कियो सनेह जाग्यो युग चारयो है।
तपन में तप्यो तप जलधि में जप्यो जप,
केशौदास वपु मास मास प्रति गारयो है॥
उडुगण ईश द्विज ईश औषधीश भयो,
यदपि जगत ईश सुधा सो सुधारयो है।

---

१ फनिन्द = फणीन्द्र, शेष, बड़ा नाग। २ मुकुर = शीसा, दर्पण।
३ अकलङ्कित = कलङ्क रहित, शुद्ध, स्वच्छ। ४ चारु = सुन्दर।

सुनि नन्द नन्द प्यारी तेरे मुख चन्द सम,
चन्द पै न भयो कोटि छन्द[1] करि हारयो है ॥

—इत्यादि ।

विज्ञान-गीता

आपका चौथा ग्रन्थ विज्ञान-गीता है। इसे आपने सं० १६६७ वि० में महाराजा श्रीवीरसिंह देव की प्रार्थना पर उनके लिए लिखा था। इसमें इक्कीस अध्याय हैं। यह अध्यात्म विषय का ग्रन्थ प्रबोध चन्द्रोदय की भाँति है, प्रथम बारह अध्यायों में इसमें महामोह और विवेक की लड़ाई का वर्णन है और शेष नव अध्यायों में ज्ञान कहा गया है जो कि बहुत ही मनोहर और उपदेश प्रद है।

उदाहरणार्थ देखिए:—

निसि बासर बस्तु विचारहिकै, मुख साँचु हिए करुना धनु है।
अघ-निग्रह, संग्रह धर्म कथानि, परिग्रह साधुनि को गनु है॥
कहि 'केशव' भीतर जोग जगै, अति बाहर भोगनिसों तनु है।
मन हाथ सदा जिन के तिनको, बनु ही घरु है घरु ही बनु है॥

× × × × ×

पेटनि पेटनि ही भटक्यो, बहु पेटनि की पदवीन नक्यो[2] जू।
पेट ते पेट लियो निकस्यो, फिरके पुनि पेटहिसों अटक्यो जू॥
पेट को चेरो सबै जग, काहू के, पेट न पेट समात तक्यो जू।
पेट के पन्थन पावहु 'केशव' पेटहि पोषत पेट पक्यो[3] जू॥

---

१ छन्द = यत्न, उपाय। २ नक्यो = पार कर गया। ३ पक्यो = पक गया।

वीरसिंहदेव-चरित्र आपका पाँचवाँ ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आपने सं० १६६४ वि०में बनाया था। इसमें महाराजा वीरसिंहदेवजी ओरछा नरेश का जीवन वृत्तान्त है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़े ही महत्व का है। इससे वीरसिंह देव महाराज का चरित्र तथा अबुलफ़जल की लड़ाई का वृत्तान्त भली प्रकार जाना जाता है। अन्त में राजाओं के कर्त्तव्य आदि पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ वास्तव ही में बड़ा ही पाण्डित्य पूर्ण है। उदाहरणार्थ कुछ कविताएँ देखिए:—

वीरसिंहदेव-चरित्र

दानन में बलि से विराजमान जिहँ पहँ,
माँगवेकौं है गये त्रिविक्रम तनक से।
पूजत जगत्प्रभु द्विजन की मण्डली में,
केसौदास देखियत सौनक सनक से॥

जोधनि में भरथ भगीरथ दशरथ प्रभु,
पारथ से विक्रम समरथ बनक से।
मधुकरशाह सुत महाराज वीरसिंह,
केसौदास राजनि में राजत जनक से॥

× × ×

जानि देव्य देव अब पूजौ जगजीव सब,
पूजा जगमगा रही केशव निवास में।
पंकन ससंकन मृगङ्क अङ्क अङ्कि तन,
मृगमद चर्चित[1] सोहत सुवास में॥

मधुकरशाह नन्द साँचे ही तुम्हारे यह,
देखियत जस कन्द चन्दन अकास में।
चन्दन चमक चारु चाँदनीन जल बुन्द,
फूल स्वच्छ अच्छतनि[2] तारका प्रकास में॥

---

१ चर्चित = पोता हुआ, लेपित। २ अच्छतनि = बिना टूटा हुआ, अखण्डित।



कवीन्द्र केशव का रहीम से घनिष्ट परिचय था। आपने सं० १६६६ वि० में 'जहाँगीरचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है जहाँगीर के दर्बार आदि का वर्णन है। इस ग्रन्थ में 'उद्यम' तथा 'भाग्य' का परस्पर वार्तालाप देकर आपने सभा के सभी सरदारों का चतुराई से वर्णन कर दिया है। यथाः—

जहाँगीरचन्द्रिका

[उद्यम]

सभा सरोवर हंस से, सोभित देव प्रमान।
वे दोऊ नृप कौन हैं, कहिए भाग्य प्रमान॥

[भाग्य]

जीते जिन गक्खरी, भिखारी कीन्हें भक्खरी से,
खानि खुरासानि बाँधि (?) खेरियो पर के।
चोरि मारे गोरिया बराह बोरि बारिधि में,
मृग से बिड़ारे गुजराती लीने डर के॥
दच्छिन के दच्छ दीह, दन्ती ज्यों बिड़ारे वीर,
'कैसौदास' अनायास कीने घर घर के।
साहिबी के रखवार, सोभिजै सभा में दोऊ,
खानखाना मानसिंह, सिंह अकबर के॥

(?) यहाँ कोई अक्षर छूट गया है हस्तलिखित प्रति में भी यह अक्षर नहीं था। कीड़े ने उतने स्थान के काग़ज़ को नष्ट कर दिया था।

खानखाना रहीम के लिए आपने अपने इस ग्रन्थ में लिखा है।

ताको पुत्र प्रसिद्ध महि, सब खानन को खान।
भयो खानखाना प्रकट, जहाँगीर तनु-त्रान॥

साहि जू की साहिबी को, रच्छक अनन्त गति,
कीनों एक भगवन्त, हनुमन्त वीर सों।
जाकौ जस 'कैसोदास' भूतल के आसपास,
सोहत छबीलो छीरसागर के छीर सों॥
अमित उदार अति पावन विचार चारु,
जहाँ जहाँ आदरिबो, गङ्गाजी के नीर सों।
खलन के घालिबे कों खलक के पालिबे कौं,
खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सों॥

—इत्यादि।

रतन-बावनी

महाराजा मधुकरशाह के पुत्र रतनसिंहजी के लिए आपने रतन बावनी नामक ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ की रचना एक अनोखी घटना पर हुई थी। महाराजा मधुकरशाह का ऊँचा जामा देखकर बादशाह अकबर ने उनसे इसका कारण पूछा तब महाराजा मधुकरशाह ने कहा कि महाराजाधिराज मेरा देश बुन्देलखण्ड काँटों की भूमि है, तब अकबर ने क्रोध से कहा कि अच्छा मैं आपका वह घर देखता हूँ। इतना सुनने पर दरबार से लौटकर महाराजा मधुकरशाह ने अपने पुत्र रतनसिंह को इस आशय का पत्र लिखा कि कुछ दिनों बाद दिल्लीपति अकबर ओड़छा देखना चाहते हैं अब उसका भार तुम्हारे हाथ में है। इत्यादि।



(कुण्डलिया)

दिल्लीपति सजि सैन सब, चलौ सहित अभिमान,
हय गय पयदर को गनन, कियौ न बीच मिलान,
कियौ न बीच मिलान, नृपति बड़ संग सु लीनैं,
पातशाह खत लिखव, अगबनैं भेज सु दीनैं,
सुनि रतनसैंन मधुशाह सुव, अब सुखेत तहँ सज्जियव।
कहि केशव मौलित पूर हुव, नग्र आपनौ छंडियव॥

(छप्पय)

बाँचौ खत तब कुँवर हृदय महँ बहुत सु फुल्लिव,
लाज रखहु कुल सहित बचन साथिन सन बुल्लिव,
लिख मलेच्छ यह बात ज्वाब सबही सिखि दिज्जहु,
तुम सब सिर मम भार पीठ पर बल सब किज्जहु,
जो रतनसैन मधुशाह सुव, अंगद सम पग रुप्पहहिं।
कहि केशवपति शिर धार पनि, शाहि दलह तव लुट्टहहिं॥

साजि चनू मधुशाह सुव,
हर बल दल कर अग्र।
हय गय पयदर सज सकल,
छाँड औंड़छो नग्र॥

× × × ×

लोकपाल दिगपाल जिते भुवपाल भूमि गुनि,
दानव देव अदेव सिद्ध गंधर्व सर्व मुनि,
किन्नर नर पशु पच्छि जच्छ रच्छस पन्नग नग,
हिंदुव तुर्क अनेक और जल थलहु जीव जग,
सुरपुर नरपुर नागपुर सब सुनि केशव सजियहु।
सुनि महाराज मधुशाह सुव कौन जुद्ध जुर भजियहु॥



किधौं सत्त की शिखा शोभ साखा सुखदायक,
जनु कुल दीपति जोति शुध्ध तम मेंटन लाइक,
किधौं प्रगट पति पुञ्ज पुन्य पल्लव कर पिख्खिय,
किधौं कित्त पाताल तेज मूरत करि लिख्खिय,
कहि केशव राजत परस पर, रतनसैन शिर अभ्भियहु।
जनु प्रलय काल फणपति कहूँ, सुफणपतिफण उद्दतकियहु॥

—इत्यादि।

इनके अतिरिक्त आपने 'नखशिख' तथा और भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है किन्तु अभी उनका शोध नहीं मिलता है। आपकी अनेक स्फुट रचनाएँ भी बुन्देलखण्ड में प्रचलित हैं यथाः—

सूरज में अज[1] में गणेश शक्ति शंभहू में,
शेष हू में आप ही प्रभाव पुजवत हौ।
तीन लोक रावरे[2] को सुयश बखानो जाय,
तीनों काल आप ही उवत अथवत[3] हौ॥
महिमा विवेकवे की आप में न जानी जाय,
बल बरदानी कौ बलीश नसवत हौ।
केशौ कहाय केशौ जांचौं आप ही को द्वार,
ताहि द्वारिका के नाथ द्वार काके पठवत हौ॥

आशुतोष औघड़दानी शिवजी महाराज के दीन वेष का वर्णन कर उनके महादान पर आश्चर्य करते हुए आप कहते हैं:—

---

१ अज = जिसका जन्म न हो, ब्रह्मा। २ रावरे = आपका। ३ उवत अथवत = उदय अस्त, प्रगट होते तथा अस्त होते हो।



साँप के कुण्डल माल कपाल,
जटान के जूट रहे जुटिया ते।
खाल पुरानी पुरानो हू बैल,
सो और की और कहैं विषमाते॥
पार्वती पति सम्पति देख,
कहैं यह 'केशव' शम्भु मताते।
आप तो माँगत भीख भिखारिन,
देत दई मुख माँगी कहाँ ते॥

—इत्यादि।

स्थानाभाव के कारण अब और अधिक उदाहरण आपकी कविता के नहीं दिए जाते हैं; विशेष जानने वालों को कवीन्द्र केशव की रचनाएँ गम्भीरतापूर्वक मनन करनी चाहिए। मेरा तो विश्वास है कि आपकी रचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ लेने से ही कविता करने में नवयुवक कवियों की खासी पैठ हो सकती है। अस्तु,

कवीन्द्र केशव के समस्त ग्रन्थों और अन्य स्फुट कविताओं के अनुशीलन करने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि आप वास्तव ही में हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य और ऊँची श्रेणी के महाकवि थे। मैं इस युक्ति से कि—

"सूर सूर तुलसी ससी उडगण केसौदास"

से सहमत नहीं हूँ। यद्यपि इन तीन कवियों की तुलनात्मक आलोचना करते समय पाठक यह जानने के लिए इच्छुक होंगे कि कौन कवि किससे अच्छा या बड़ा है। किन्तु यदि भली प्रकार विचार किया जावे तो यह कार्य बड़ा ही कठिन है। यदि केवल

एक ही विषय पर तीनों ही कवियों ने वर्णन किया हो तो यह किसी अंश में सम्भव भी है कि उनकी तुलना की जा सके; फिर भी किसी कवि का कोई अंश किसी बात में बढ़ा-चढ़ा हुआ होता है तो किसी का किसी दूसरी बात में। ऐसी दशा में उनको कविता की कसौटी पर कसना सहज नहीं है; और प्रस्तुत युक्ति में तो तुलसी और सूर को बहुत ही ऊँचा स्थान और केशव को बहुत ही नीचा स्थान दिया गया है यह ठीक नहीं।

प्रतीत होता है किसी मनचले व्यक्ति ने बिना भली प्रकार विचार किए ही इस युक्ति की रचना कर डाली है। जिन कवीन्द्र केशव को हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य्यत्व का ऊँचा पद प्राप्त है, जिनकी कविताएँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य और स्थायी सम्पत्ति हैं उनको ऐसे क्षुद्र स्थान पर स्मरण करने से हमारी हृदय-हीनता, कृतघ्नता और काव्य-ज्ञान-शून्यता का परिचय मिलता है। इससे केवल कवीन्द्र केशव ही का नहीं, काव्य-जगत् और हिन्दी-साहित्य का अपमान होता है। इस सम्बन्ध में विशेष रूप से तो मैं 'केशव-ग्रन्थावली'* नामक सीरीज में फिर

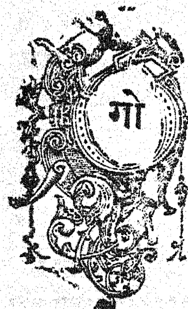
---

* केशवदासजी के ग्रन्थ अभी हिन्दी संसार में अच्छे रूप में नहीं हैं। अतः 'केशव-ग्रन्थावली' को सम्पादन करने का श्रीगणेश मैंने कर दिया है। यह कार्य कुछ वर्ष पहिले काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध से हमारे मित्र स्व० बा० कृष्णबलदेवजी वर्मा ने प्रारम्भ किया था किन्तु उनका असमय शरीरपात हो जाने से वह कार्य न हो सका। स्व० वर्माजी को मैंने अपना बहुत कुछ केशव-सम्बन्धी साहित्य और ग्रन्थ भी भेज दिये थे और सम्भवतः रामचन्द्रिका का सम्पादन वे कर भी चुके थे।

—लेखक।

कभी लिखूँगा किन्तु यहाँ इतना लिख देना अनुपयुक्त न होगा कि केशव का स्थान कविता जगत् में यदि तुलसी और सूर से ऊँचा नहीं है तो किसी प्रकार भी उनसे नीचा भी नहीं है। तुलसीदासजी यदि कथानक प्रबन्ध-निर्वाह और सरल भक्ति भाव से ओत-प्रोत कविता लिखने में सिद्धहस्त हैं; और यदि सूरदासजी मनोहर पद-लालित्य और प्रेमपूर्ण रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं तो कवीन्द्र केशव भी गम्भीर, भावपूर्ण तथा अर्थ-गौरवतामय कविताओं के अद्वितीय कवि माने गए हैं; और चरित्र चित्रण, राजनीति तथा ऐतिहासिक तथ्यों का साङ्गोपाङ्ग मर्म देने के कारण उनकी महत्ता और भी किन्हीं अंशों में बढ़ जाती है। हिन्दी कविता के रीति विषयक ग्रन्थों के एक ओर तो उन्हें हम प्रवर्तक मानें, हिन्दी-भाषा के प्रथम आचार्य मानें और दूसरी ओर तुलसी सूर या किन्हीं और कवियों के पश्चात् स्थान दें यह बात बिल्कुल जँचती नहीं है। जिन्होंने ऐसा किया है उनसे मेरा एक बार यह विनम्र निवेदन है कि सब ही बातों पर भली प्रकार विचार करके केशव की काव्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने की कृपा करें। मुझे विश्वास है उनकी उज्ज्वल आत्मा उनकी भूल को अपने आप स्वीकार कर लेगी। मुझे किसी भी कवि के प्रति पक्षपात नहीं है; किन्तु हिन्दी संसार में फैले हुए भ्रम के निवारणार्थ अपने परिमित अध्ययन तथा अल्पबुद्धि के अनुसार इन पंक्तियों को लिख देना यहाँ उचित जान पड़ा।

५—गोविन्द स्वामीजी



विन्द स्वामीजी का जन्म वि० सं० १५६५ के लगभग आंतरी में हुआ था, पश्चात् आप महावन में रहने लगे, और लोगों को शिक्षा-दीक्षा देने लगे थे।

अन्त में आप भी स्वयं स्वामी बिट्ठलनाथजी के शिष्य हो गए, और तब से गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी की सेवा में रहने लगे।

आप अच्छे कवि होने के अतिरिक्त गान-विद्या में भी बहुत ही निपुण थे। यहाँ तक कि संसार-प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन भी आपके गाने पर मोहित हो जाते थे।

आपने गोवर्द्धन के पास कदम्ब का एक बाग़ लगवाया था, जो अब तक वर्तमान है और 'गोविन्द स्वामी की कदम्ब खण्डी' कहलाता है।

आपका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका। आपकी रचनाएँ प्रायः सुनने में आती हैं। स्फुट पद भी इधर-उधर देखे-सुने गए हैं। आपकी कविता सरस और मधुर होने के साथ ही साथ श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति में भरी हुई पाई जाती है, और गाने वाले तो उसे पढ़कर विह्वल ही हो जाते हैं। आपकी कविता को अच्छे गायक ही सफलता-पूर्वक गा सकते हैं। आपका कविता-काल अनुमानतः सं० १६३० वि० माना गया है।

आपकी सुन्दर रचनाओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं। देखिए:—

प्रात समै उठि जसुमति जननी,
गिरिधर सुत को उबटि न्हवावति;
करि श्रृङ्गार बसन भूषन सजि—
फूलन रचि-रचि पाग बनावति।
छुटे बन्द बागे[1] अति शोभित;
बिच-बिच चोब अरगजा[2] लावति।
सूथन[3] लाल फूँदना[4] सोभित;
आजु की छबि कछु कहति न आवति।
विविध कुसुम[5] की माला उर धरि;
श्रीकर मुरली बेत गहावति।
लै दरपन देखैं श्रीमुख को;
'गोविन्द' प्रभु-चरननि सिर नावति।

× × ×

आवत ललन पिया रँग-भीने;
सिथिल अङ्ग डगमगत चरन गति मोतिन हार उर चीने[6]।
पारिजात[7] मन्दार[8] माल लपटात मधुप मधु पीने।
'गोविंद' प्रभु ! पिय तहीं जाहु जहँ अधर[9] दसन[10] छत[11] कीने॥

---

१ बागे=वस्त्र विशेष। २ चोब अरगजा=सुगन्धि विशेष। ३ सूथन=पायजामा। ४ फूँदना=धागे, रेशम आदि के बने हुए फूल। ५ विविध कुसुम=अनेक प्रकार के फूलों की माला। ६ मोतिन हार उर चीने=मोतियों के हार के हृदय पर चिह्न हैं। ७ पारिजात=देवतरु देवताओं का वृक्ष, सुरद्रुम, मूँगा। ८ मन्दार=स्वर्ग का एक वृक्ष। ९ अधर=ओंठ। १० दसन=दाँत। ११ छत=निशान, चिह्न।

६—तानसेन



नसेनजी ग्वालियर के निवासी और ब्राह्मण थे; आप स्वामी हरिदासजी के शिष्य थे। आपका असली नाम त्रिलोचन मिश्र था। आपके पितामह ग्वालियर-नरेश महाराज रामनिरंजनजी के दरबार में जाया करते थे और तानसेनजी को भी अपने साथ ले जाते थे। इन ही महाराज रामनिरंजनजी ने आपको तानसेन की उपाधि दी थी।

गान-विद्या के गुरू आपके बैजू बावरे और शेख मुहम्मद ग़ौस ग्वालियर वाले माने जाते हैं। शाही घराने की कन्या से विवाह कर लेने के कारण आप मुसलमान हो गए थे। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि शेख़ मुहम्मद ग़ौस ने अपनी जिह्वा को तानसेन की जिह्वा से लगा दिया था तब ही से यह अच्छे गायक और मुसलमान हो गए थे; किन्तु इस किम्बदन्ती में विशेष सार नहीं जान पड़ता।

आपका जन्म प्रायः सं० १६०० वि० के लगभग हुआ था। आपका कविता काल सं० १६३० वि० के लगभग माना जाता है। सूरदासजी ने आपके सम्बन्ध में कहा है कि:—

विधना यह जिय जानके सेसहि दिए न कान;
धरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान।



तानसेनजी ने भी सूरदासजी की प्रशंसा में यह दोहा कहा था:—

किधौं सूर कौ सर लग्यो, किधौं सूर की पीर,
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर।

आपने (१) सङ्गीतसार (२) रागमाला और (३) श्रीगणेश-स्तोत्र नामक ग्रन्थों की रचना की है। आपकी रचनाओं के अधिक उदाहरण प्राप्त नहीं हो सके हैं। 'शिवसिंह सरोज' में आपका यह पद लिखा हुआ है :—

(पद)

तेरे नैन लोने री जिन मोहे श्याम सलोने।
अति ही दीर्घ बिसाल विलोकि कारे भारे पिय रस रिझए कोने॥
वदन-ज्योति चन्दहु ते निर्मल कुच कठोर अति होने बोने।
तानसेन प्रभु सों रति मानो कंचन कसोटी कसोने॥



अकबर-दरबारी-सुकवि, विज्ञ, वीर, रणशूर ;
हास्य-रसिक-वर बीरबल, गुण-ग्राहक, भरपूर ।

'शङ्कर'

७—महाराजा बीरबल



हाराजा बीरबल 'ब्रह्म' का जन्म सं० १५८५ वि० के लगभग कालपी में हुआ था। आपका असली नाम पं० महेशदास दुबे था, सम्राट् अकबर के दरबार में पहुँच कर आप 'बीरबल' के उपनाम से प्रसिद्ध हो गए और कालन्तर में आपका यह उपनाम इतना प्रख्यात हो गया कि आपके असली नाम को बहुत ही कम लोग जानते हैं। मुझे आपके इस नाम का पता सर्वप्रथम कालपी पहुँचने पर बुन्देलखण्ड के प्रख्यात इतिहासज्ञ स्व० श्री० बा० कृष्णबल्देवजी वर्मा से लगा था; पश्चात् दी० प्रतिपालसिंहजी के "बुन्देलखण्ड का इतिहास" नामक ग्रन्थ में भी इसका विवरण देखने को मिला, आपने अपने इस ग्रन्थ के १७८ वें पृष्ठ पर इस प्रकार लिखा है:—

"कालपी में सन् १६२८ ई० में महेशदास दुबे पैदा हुए थे, जो फिर अकबर के दरबार में पहुँच कर बीरबल के नाम से प्रख्यात हुए।"

'शिवसिंह सरोज' में भी आपको इस प्रकार लिखा है:—

"इनका प्रथम नाम महेशदास था। यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण दुबे ज़िले हमीरपुर के किसी गाँव के रहने वाले थे, काव्य पढ़-लिखकर राजा भगवानदास आमेर-नरेश के यहाँ कवियों में



नौकर हो गए, राजा भगवानदास ने इनकी कविता से बहुत प्रसन्न होकर अकबर बादशाह को नज़र के तौर दे दिया। राजा बीरबल ने अकबर के हुक्म से अकबरपुर गाँव (ज़िले कानपुर में) बसाकर आपने भी अपना निवास-स्थान उसी को नियत किया।" इत्यादि

उपर्युक्त लेखों से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि आप बुन्देलखण्ड प्रदेशान्तर्गत कालपी ही के निवासी थे पश्चात् अकबर बादशाह से जागीर मिल जाने पर भले ही वे अकबरपुर में रहने लगे हों और वहीं पर उनके वंशधरों के रहने के कारण सुबुध मिश्र बन्धुओं ने उन्हें अपने 'मिश्र-बन्धु-विनोद' नामक ग्रन्थ में अकबरपुर ही का निवासी लिख दिया है। बीरबल बड़े ही प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इन्होंने एक साधारण वंश में उत्पन्न हो कर अपने असाधारण बुद्धिबल के प्रभाव से अपनी खासी उन्नति कर ली थी और बादशाह अकबर के नवरत्नों में स्थान पा लिया था; पश्चात् महाराजा की उपाधि तथा अच्छी जागीर भी प्राप्त करली थी।

बीरबल बड़े ही युक्ति-विशारद थे। आपकी उपज इतनी अनूठी होती थी कि जिसे सुनकर सभी लोग स्तम्भित हो जाते थे। आपकी इन युक्तियों का संग्रह बीरबल-विनोद नामक ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक देखने को मिलता है।

बीरबल, बादशाह अकबर के सेनानायकों में थे और रणक्षेत्र ही में सं० १६४० वि० में इनका शरीरपात हुआ था। सुनते हैं इस युद्ध में जाने के समय बादशाह अकबर ने यह घोषणा की थी कि प्यारे बीरबल के अनिष्ट की बात किसी के



मुँह से निकलेगी तो वह भीषण दण्ड का भागी होगा। कहा जाता है कि दैवगति से जब उन के मारे जाने का समाचार आया तब सारा दरबार स्तब्ध हो गया, लोग चिन्तित थे कि किस प्रकार यह समाचार बादशाह अकबर तक पहुँचाया जावे, सब किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गए। सौभाग्यवश कवीन्द्र पं० केशवदासजी उन दिनों वहीं पर थे अतः सब ने उन से प्रार्थना की और अपनी कठिनाई का उल्लेख किया, तब कवीन्द्र केशव ने बादशाह अकबर के पास जाकर यह दोहा कहा :—

याचक सब भूपति भए, रह्यो न कोऊ लेन;
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरबल देन।

इस को सुनकर बादशाह अकबर बोल उठे कि हाय! क्या बीरबल मारे गए, तब कवीन्द्र केशव ने कहा जहाँपनाह! इस प्रकार कहने की राज्याज्ञा नहीं थी। इसे सुनते ही अकबर ने शोकाकुल हो यह सोरठा पढ़ा :—

सब को सब कुछ दीन्ह, दुःख न काहू को दियो;
सो मर हम को दीन्ह, भली निबाही बीरबर।

बीरबल कवियों का बड़ा ही आदर करते थे। आपके द्वारा अकबर बादशाह के दरबार में कवियों का सदैव ही अच्छा सम्मान होता रहा है; गुण ग्राहकता तो आप में इतनी अधिक थी कि आपने कवीन्द्र केशवदासजी को उनके एक ही सवैये पर ६ लाख रुपया दे डाला। वह सवैया यह है :—

पावक, पंछी, पशू, नर, नाग, नदी, नद, लोक रचे दस चारी;
'केशव' देव, अदेव रचे, नरदेव रचे रचना न निवारी।



कै बर बीर बली बलबीर, भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी;
दै करतापन आपन ताहि, दई करतार दुवौ करतारी।

इसके पश्चात् कवीन्द्र केशवदासजी ने एक सवैया और आपको सुनाया जिसके सुनने पर आपने अकबर बादशाह द्वारा महाराज इन्द्रजीतसिंहजी पर किया गया एक करोड़ का जुरमाना भी माफ़ करवा दिया। ऐसी अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं आपके सम्बन्ध की मिलती हैं।

आप ही के प्रयत्न से अकबर बादशाह के राजत्वकाल में गोबध बन्द हो गया था और हिन्दू मुसल्मानों में मेल-जोल हो गया था। आपका कविताकाल सं० १६३० वि० से प्रारम्भ होता है।

आपने व्रजभाषा में बड़ी सरस, मनोहर और सालंकारी कविता की है। आपके किसी ग्रन्थ का पता अब तक नहीं लग सका है किन्तु कविताएं आपकी अच्छी संख्या में मिलती हैं।

उदाहरण :—

उछरि उछरि भेकी[1] झपटै उरग पर,
उरग[2] पै केकिन के लपटैं लहकि है;
केकिन[3] के सुरति हिए की ना कछू है भए,
एकी करी केहरि न बोलत बहकि है,
कहै 'कवि ब्रह्म' बारि हेरत हरिन फिरैं;
बैहर बहत बड़े जोर सौं जहकि है;
तरनि के तावन तवा-सी भई भूमि रही,
दस हू दिसान में दवारि-सी दहकि है।

---

१ भेकी = मेंढ़की। २ उरग = साँप। ३ केकिन = मोरनी।

एक समै हरि धेनु[1] चरावत, बेनु[2] बजावत मंजु रसालहि;
दीठि[3] गई चलि मोहन की, वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि।
सो छबि ब्रह्म लपेटि हिए, करसौं करलै कर कंज सनालहि[4];
ईस के सीस कुसुम्भ[5] की माल, मनौ पहिरावति ब्यालिनि ब्यालहि[6]।
सखि भोर उठी बिन कंचुकी कामिनि, कान्हर तें करि केलि घनी;

× × ×

कवि ब्रह्म भनै छबि देखत ही, कहि जात नहीं मुख तें बरनी।
कुच अग्र नखच्छत कंत दयो, सिर नाय निहारि लियो सजनी;
ससिसेखर[7] के सिर से सु मनों, निहुरे ससि लेत कला अपनी।

× × ×

पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक[8] परोस लजाय न सारो;
बन्धु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट[9] चाकर चोर अतीथ धुतारो[10]।
साहब सूम अराक[11] तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो[12]
'ब्रह्म' भनै सुन शाह अकब्बर बारहो बांधि समुद्र में डारो।

---

१ धेनु = गाय। २ बेनु = बंशी। ३ दीठि = दृष्टि। ४ सनालहि = कवच को। ५ कुसुम्भ = पुष्प। ६ ब्यालहि = साँप को। ७ ससि-सेखर = चन्द्रमा के मस्तक से। ८ लराक = लड़नेवाले। ९ लम्पट = नीच। १० धुतारो = धूर्त, बदमाश। ११ अराक = एराक, अरब का देश, वहाँ का घोड़ा। १२ नकारो = नाहीं करने वाला।

८—हरीराम शुक्ल



रीरामजी शुक्ल उपनाम 'श्रीव्यासजी' का जन्म ओरछे में सं० १५६० वि० के लगभग हुआ था। आपका कविता काल सं० १६३१ वि० के लगभग से माना गया है। आपका उपनाम 'व्यासजी' था और उसने यहाँ तक प्रसिद्धि प्राप्त करली थी कि अधिकांश लेखकों ने आपको आपके उपनाम ही से अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे।

शुक्लजी संस्कृत भाषा के अगाध पण्डित थे। पहिले आप गौर सम्प्रदाय के अनुयायी थे किन्तु पीछे फिर गोस्वामी श्रीहितहरिबंशजी के शिष्य होकर राधावल्लभीय हो गए थे। आप अन्य सम्प्रदायों में भेदभाव नहीं मानते थे। आपकी दृष्टि में साधु-मात्र भगवत् स्वरूप थे। ब्रज के आप अनन्य भक्त थे, जितने जोरदार शब्दों में ब्रज की आपने प्रशंसा की है उतनी शायद ही किसीने की हो। जाति और कुलीनता से आप भक्ति और भक्त को कहीं ऊँचा बतलाते थे।

ओरछे में आप तत्कालीन ओरछा-नरेश महाराजा मधुकर-शाह के गुरु थे किन्तु अधिकतर आप ब्रज ही में रहते थे। आपके तीन पुत्र थे और तीनों ही महात्मा और कवि थे।

वैराग्य, ज्ञान, सिद्धान्ती, पदों और साखियों में आपने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है, आपकी कविताएँ ललित और भावपूर्ण हैं, पाखण्डियों को आपने ख़ूब ही खरी खरी बातें सुनाई हैं।

उदाहरण:—

व्यास मिठाई विप्र की, तासें लागे आगि।
वृन्दावन के स्वपच[1] की, जूठनि खैये माँगि॥

मुहरैं मेवा अनत के, मिथ्या भोग विलास।
वृन्दावन के स्वपच की जूठन खैये व्यास॥

वृन्दावन के स्वपच को, रहिये सेवक होय।
तासों भेद न कीजिए, पीजे रज पद धोय॥
व्यास कुलीननि कोटि मिलि, पण्डित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पानही, तुलैं न तिनके सीस॥

× × ×

[बिहार के पद]

(सारँग)

बृंदावन कुंज कुंज केलि बेलि फूली।
कुंद कुसुम चंद नलिन विद्रुम छबि भूली।
मधुकर सुक पिक अनार, मृगज[2] सानुकूली॥
अद्भुत घन मण्डल पर, दामिनि[3] सी झूली[4]।
'व्यास' दासि रंग रासि देखि देह भूली[5]॥

---

१ स्वपच = मेहतर। २ मृगज = कस्तूरी। ३ दामिनि = बिजली। ४ झूली = प्रकाशित हुई। ५ देह भूली = देह की सुधि न रही, देहाभिमान चला गया।



[साखी]

'व्यास' न कथनी[1] काम की,
करनी[2] है इक सार।
भक्ति बिना पण्डित वृथा,
ज्यों चंदन खर भार[3] ॥

*　　*　　*　　*

'व्यास' दास से पतितों सों,
भृगु[4] को पलटौ लेहु।
उन उर दीनों एक पग,
तुम दोऊ पग देहु ॥

*　　*　　*　　*

'व्यास' दीनता के सुखहिं,
कह जाने जग-मंद[5]।
दीन भये ते मिलत हैं,
दीनबन्धु सुखकंद ॥

---

१ कथनी = केवल बकवाद, कोरी बातों का जमा खर्च। २ करनी = कार्य्यों का करना ही। ३ खरभार = गधे पर का बोझा। ४ भृगु = भृगु मुनि। जिन्होंने विष्णु भगवान् के हृदय में लात मारी थी और प्रत्युत्तर में भगवान् ने चरण हाथ में लेकर ऋषिजी से पूछा कि कहीं मेरे कठोर हृदय से आपके कोमल चरणों में आघात तो नहीं पहुँचा। क्षमा का अद्वितीय उदाहरण है। व्यासजी कहते हैं मैं उन्हीं का तो वंशज हूँ दोनों चरण हृदय पर रखकर बदला चुका लीजिए। अनोखी सूझ है। ५ जग-मंद = अज्ञानी संसार।



मुड़िया-भाषा-प्रवर्तक, बहु गुण-गरिमासीन ;
राजा टोडरमल यही, 'शङ्कर' सुकवि-प्रवीन ।

'शङ्कर'

९—राजा टोडरमल



राजा टोडरमल खत्री, कालपी (बुन्देलखण्ड) का जन्म सं० १५८० वि० के लगभग हुआ था। आपके पिताजी का शुभ नाम आदि विशेष बातें मालूम नहीं हो सकी हैं। आप शेरशाह सूर के समय में उच्च पदाधिकारी थे और पश्चात् अकबर बादशाह के भूमि-कर-विभाग के प्रधान आमात्य हो गए थे। प्रथम आप कालपी के निवासी थे और जिस मकान में आपके पूर्वज रहते थे वह अब भी विद्यमान है और एक प्रतिष्ठित खत्री परिवार के आधीन है।

एक बार आप बङ्गाल के गवर्नर भी बनाए गए थे। आप युद्ध-विद्या में भी कुशल थे और कई बार आपने पठानों को भी परास्त किया था। आपका शरीरपात सं० १६४६ वि० में हुआ था। आपका कविता-काल सं० १६३१ वि० से प्रारम्भ होता है। आपका कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आया, हाँ स्फुट रचना अवश्य मिलती है जो कि सरस और मनोहर है।

उदाहरण:—

सोहै जिन सासन में, आत्मानुसासन सु,
जी के दुखहारी सुखकारी साँच सासना;
जाको गुन भद्रकार, गुण भद्र जाको जानि,
भद्र[1] गुन धारी भव्य, करत उपासना।

---

[1] भद्र = सभ्य, सुशिक्षित, कल्याणकारी।

ऐसे सार साख्र को प्रकाश अर्थ जीवन को,
बनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना;
ताते देस भाषा अर्थ को प्रकास करु जाते,
मन्द बुद्धि हू के हिये, होवै अर्थ भासना[1] ॥
गुन बिनु धन जैसे, गुरु बिनु ज्ञान जैसे,
मान बिन दान जैसे, जल बिन सर[2] है ;
कण्ठ बिन गीत जैसे, हित बिन प्रीति जैसे,
वेश्या रस रीति जैसे, फल बिन तर[3] है ।
तार बिन जन्त्र जैसे, स्याने बिन मंत्र जैसे,
पुरुष बिन नारी जैसे, पुत्र बिन घर है;
टोडर सुकवि जैसे मन में विचारि देखो,
धर्म बिन धन जैसे, पच्छी बिन पर है ॥
जार[4] को बिचार कहा, गनिका को लाज कहा,
गदहा को पान कहा, आँधरे को आरसी[5];
निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिदी को,
सेवा कहा सूम को अरण्डन[6] की डार सी ।
मदपी[7] को सुचि[8] कहा, साँच कहा लम्पट[9] को,
नीच को बचन कहा, स्यार की पुकार सी;
टोडर सुकवि ऐसे हठी ते न टारे टरै,
भावे कहो सुधी बात, भावे कहो फारसी ॥

---

१ भासना = प्रकाशित होना । २ सर = तालाब । ३ तर = तरु, पेड़ । ४ जार = उपपति, यार, पराई स्त्री से प्रेम करने वाला । ५ आरसी = दर्पण । ६ अरण्डन = अण्ड नामक वृक्ष । ७ मदपी = मद्य पीने वाले, शराब पीने वाले, नशा करने वाले । ८ सुचि = शुद्धता । ९ लम्पट = बदमाश, धूर्त्त ।

१०—आसकरणदास



आसकरनदास क्षत्रिय का जन्म प्रायः सं० १५६० वि० में नरवर (ग्वालियर) में हुआ था। आप राजा भीमसिंह के पुत्र थे। आपके किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता है स्फुट पद ही आपके सुने जाते हैं। आपका कविता-काल सं० १६३०,३१ वि० के लगभग माना जाता है। आपकी रचनाएँ साधारण होती थीं।

उदाहरण:—

उठो मेरे लाल गोपाल लाड़िले,
रजनी[1] बीती बिमल भयो भोर।
घर घर में दधि मथत गोपियाँ,
द्विज करत वेद की शोर।[2]
करो कलेऊ दधि अरु ओदन[3],
मिसरी बाँटि परोसों[4] ओर।
'आसकरन' प्रभु मोहन तुम पर,
वारों[5] तन, मन, प्रान अकोर।

---

१ रजनी = रात। २ द्विज......शोर = ब्राह्मण वेदोच्चार करते हैं। ३ ओदन = भात, पका हुआ चावल। ४ परोसों = परोस दूँ। ५ वारों = वार दूँ।

११—रहीम कवि

अब्दुलरहीमखाँ खानखाना 'रहीम' का जन्म सं० १६१० वि० में हुआ था। आप अकबर बादशाह के पालक बैरमखाँ के पुत्र थे। आप अकबर बादशाह के प्रधान सेनापति, मंत्री और विशेष कृपापात्र थे और जहाँगीर बादशाह के समय तक आप इसी पद पर रहे, किन्तु पश्चात् जहाँगीर के कोप-भाजन बनकर बंदी और अपमानित होकर चित्रकोट रहने लगे थे।

'रहीम' बड़े ही नीतिवान और शान्ति स्वभाव के महापुरुष थे, कहते हैं यावज्जीवन आपने किसी पर भी क्रोध नहीं किया। कवियों और गुणियों को तो दान देने में आप कैसा कोई विरला ही होगा। गङ्ग कवि को केवल एक ही छन्द की रचना पर ३६ लाख रुपये आपने दे डाले थे; वैभव-विहीन हो जाने पर भी याचक लोग आप को घेरे ही रहते थे। सुनते हैं जब आप चित्रकोट थे तो किसी याचक ने आपको कारणविवश बहुत घेरा तब आपने एक लाख मुद्रा रीवां-नरेश से दिलवा दिए थे, उस समय आपने यह दोहा रीवाँ-नरेश को सुनाया था :—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश ;
जा पर बिपदा परति है सो आवत यहि देश।

आपका कविता काल सं० १६४० वि० से प्रारम्भ होता है। आप अरबी, फारसी, हिन्दी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे।

आपने (१) रहीम-सतसई (२) बरवै नायिका भेद (३) रास पंचाध्यायी (४) मदनाष्टक (५) शृंगार सोरठ और (६) दीवान फ़ारसी की रचना की तथा (७) वाक़यात बाबरी का फारसी अनुवाद किया। आपका निधन सं० १६८४ वि० है। रहीम की कविता की उत्तमता की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। आपने मुसलमान होते हुए भी ऐसी उत्तम कविता की है जैसी कि आपके समकालीन अच्छे अच्छे हिन्दू कवि भी कर सकने में समर्थ नहीं हो सके हैं। आपकी कविता बड़ी ही मधुर, भावपूर्ण, सरस और सरल हुई है।

उदाहरण :—

[रहीम सतसई से]

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि॥

जे रहीम बिधि बड़ किए, तो कहि दूषण काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि॥
कदली सीप भुजंग मुख, स्वांति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन॥

फरजी[1] साह[2] न ह्वै सके, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सूधी चालु ते, प्यादो[3] होत वजीर॥

---

१ फरज़ी = वज़ीर, मंत्री। २ साह = बादशाह। ३ प्यादो = पैदल, सिपाही।

जे गरीब को आदरैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो[1], कृष्ण मिताई योग॥

अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े[2] दोऊ काम।
साँचे से तौ जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥
सब को सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम[3]॥

[शृङ्गार सोरठ से]

पलटि चली मुसुकाय, दुति रहीम उजियाय अति।
बाती सी उसकाय, मानो दीनी दीप की॥
दीपक हिये छपाय, नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै॥

[मदनाष्टक से]

कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था;
चपल चखनवाला[4], चाँदनी में खड़ा था।

कटि-तट बिच मेला, पीत सेला नवेला;
अलिबन अलबेला, यार मेरा अकेला।

[बरवै नायिका भेद से]

लहरत लहर लहरिया लहर बहार;
मोतिन जरी किनरिया बिथुरे[5] बार।

---

१ बापुरो = ग़रीब। २ गाढ़े = कठिन। ३ अटकै काम = आवश्यक काम आ पड़ने पर। ४ चपल चखनवाला = चंचल नयनों वाला। ५ बिथुरे = बिखरे।

लागेउ आनि नबेलियहि मनसिज[1] बान,
उकसन लाग उरोजवा दृग[2] तिरछान।

कवन रोग दुहुँ छतियाँ, उपजेउ आय,
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय।
औचक[3] आय जुबनवाँ मोहिं दुख दीन;
छुटि गो सङ्ग गोइयवाँ[4] नहिं भल कीन।

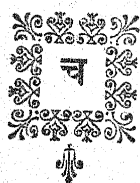
भोरहिं बोलि कोइलियाँ बढ़वत ताप;
घरि घरि एक घरिअवा रहु चुपचाप।
बाहर लैकै दियवा[5] बारन जाय;
सासु ननद ढिंग पहुँचत देति बुझाय।

होइ कत आइ बदरिया बरखहिं पाथ;
जैहों घन अमरैया लुगना साथ।

---

१ मनसिज = कामदेव। २ दृग = आँखें। ३ औचक = अचानक।
४ गोइयवाँ = सखियों का। ५ दियवा = दीपक।

१२—चतुरभुज



चतुरभुज कवि ओरछा का जन्म और कविता-काल अनुमानतः क्रमशः सं० १६१० वि० और सं० १६४७ वि० माना जाता है। आप ओरछा-नरेश महाराजा श्री वीरसिंह देव के आश्रित और दरबारी कवि थे। महाराजा वीरसिंहदेव ने सं० १६६० वि० से सं० १६८२ वि० तक राज्य किया है और इन्हीं दिनों इन महानुभाव का कविता काल ठहरता है। सुनते हैं, एक बार जब आप दरबार में पधारे तो महाराज वीरसिंहदेव का ध्यान अन्यत्र होने के कारण आपका अभिवादन उचित रूप से न हो सका, तब आपने निम्नलिखित छप्पय की तत्काल रचना की और महाराज को सुनाया।

सेत चमर[1] चिलकन्त दन्त[2] डगमगत डगत डग।
शीश हलत तन डुलत चित्त चिल मिलत धरत पग॥
द्रग झरत श्रुत[3] अश्रुत[4] वास नासा[5] भ्रम भुल्लिय।
काल ढिकह ढुक्कियह आन यह औसर[6] चुक्किय[7]॥
जंपहि न राम 'चत्रभुज' प्रबल रहब सकल दिन दुरदवर।
सुझ्झह[8] असुझ्झ संझह[9] फजर[10] है कछु खबर कि बेखबर॥

---

१ चमर = सुरा गाय की बालों का बना हुआ चँवर। २ दन्त = दाँत। ३ श्रुत = कान। ४ अश्रुत = जो सुना न गया हो। ५ नासा = नाक। ६ औसर = अवसर। ७ चुक्किय = चूकना। ८ सुझ्झह = दिखलाई देना। ९ संझह = सन्ध्या। १० फजर = सवेरा।



(सोरठा)

अरे बरसिंहा वीर, नेक न चितवत डोकरा[1] ।
पातक नसत शरीर, जब थारा[2] मुख दिक्खियाँ[3] ॥

यह सुनते ही महाराज ने आपको यथोचित ताजीम दी तब आपने निम्नलिखित छप्पय कहा:—

आतङ्क्यो असपत्त उठिव विरसिंघ सिंघ बिय[4] ।
दुवन देश दलमलन देश दक्खिन दिशा कंपिय ॥
फिर कंपिय गुजरात बहुर उत्तर सु कंप कर ।
काल पींठ दे गयद[5] देख अति ज्वाल विषम झर ॥
अँगवय[6] देव दानव न कोइ 'चत्रभुज' जग जहँ जित्तियव ।
असि[7] टेक अवनि[8] पग टेक कर धरम टेक ठड्डिय[9] भयत्र ॥

इन किम्वदन्तियों से यह भली प्रकार पता चलता है कि इन महानुभाव का ओरछा राजदरबार में अच्छा सन्मान रहा होगा। आपने कविताओं में अपना नाम प्रायः 'चत्रभुज' ही रक्खा है। आपके किसी ग्रन्थ का शोध अब तक नहीं मिल सका है। आपकी कविताएँ बड़ी ही मार्मिक, ओजस्विनी और ऊँची होती थीं।

---

१ डोकरा = वृद्ध । २ थारा = तुम्हारा । ३ दिक्खियां = देख लेता हूँ । ४ बिय = दूसरा ५ गयव = गया । ६ अँगवय = सहन करना, ओढ़ना, बरदाश्त करना । ७ असि = तलवार, खड्ग । ८ अवनि = पृथ्वी । ९ ठड्डिय = खड़ा होना ।

उदाहरण:—

अगम[१] जङ्ग[२] अङ्गवय जङ्ग रण रङ्ग अङ्ग वर।
तन तुलान तुल्लवय[३] मुक्त मन थार कनिक भर॥
देवल मण्डित ताल महल मण्डित मधरुप्पिक।
चोर चाह नहिं चुगल मेंट मधमस्तक धुप्पिक॥
'चत्रभुज' चाहत चहु चक्र जस, अवस पुत्र रक्खिव सुकर।
अस हथ्थ रथ्थ समरथ्थ जुइ जुइ थम्बहि[४] विरसिंह थर[५]॥

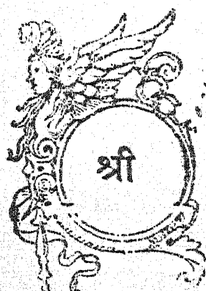
× × ×

चक्किय[६] इम उच्चरय चक्क धुन्धर किमि मंचिय[७]।
चक्क[८] कहहि सुन चक्कि देव गति जाति न बंचिय[९]॥
चोरागढ़ चड्ढियव[१०] गढ़न गढ़पति गढ़ डुल्लिय[११]।
पंचम झुक्किय बुन्देल मैन सुलतान सुपिल्लिय॥
खुर खेह[१२] गगन रवि मुन्दलिय[१३] 'चत्रभुज' अन्न न अन्न भन[१४]।
सावन सरूप जुगराज चढ़, दल बद्दल उमड़े अवन[१५]॥

---

१ अगम = जहाँ किसी की गति न हो, जहाँ कोई जा न सके। २ जङ्ग = लड़ाई। ३ तुल्लवय = तौला गया, तुलवा दिया। ४ थंबहि = पकड़े, प्राप्त करे। ५ थर = स्थान, ठौर, आश्रम। ६ चक्किय = चकई मादा, चकवा। ७ मंचिय = हो रहा है। ८ चक्क = चकवा, नर चकवा। ९ बंचिय = बाँचा जाना, जान पड़ना। १० चढ्ढियव = चढ़ाई हुई है। ११ डुल्लिय = डोल गया है, हिल रहा है। १२ खुर खेह = खुरों की धूल से। १३ मुन्दलिय = छिप गया है। १४ अन्न न अन्न भन = दूसरे से नहीं बोलते हैं। १५ अवन = अवनि, पृथ्वी पर।

१३—इन्द्रजीतसिंह महाराजा



इन्द्रजीतसिंह, महाराजा ओरछा* का जन्म प्रायः सं० १६२० वि० में ओरछे में हुआ था। आपका कविता काल सं० १६५० वि० है। आप बड़े ही गुणग्राही और कविता-प्रेमी नरेश थे। हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य्य कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र, आदि अनेकानेक कवियों के आप आश्रयदाता थे। आप स्वयम् भी कविता करते थे। आपका उपनाम 'धीरज नरिन्द' था। आपकी कविताएं सरस होती थीं।

---

* आप ओरछे की गद्दी पर नहीं रहे, ओरछा राज्य ही के अन्तर्गत कछौआ पिछौर नामक स्थान पर आप रहे थे। कवीन्द्र केशव ने भी अपने 'वीरसिंहदेव चरित' नामक ग्रन्थ में लिखा है किः—

तिन तें इन्द्रजीत लघु लसै,
सो गढ़ दुर्ग कछौवा बसै।

ऐसा ही लेख 'ओरछा गजेटियर' आदि अन्य ग्रन्थों में मिलता है।

—लेखक

उदाहरण:—

चहचही चटकीली चुनि चुनि चातुरी सों,
चोखी[1] चारु[2] चांदनी की रँगी रंग गहरे।
कंचन[3] किनारी तापै लागी छोर[4] लों हैं खुली,
दामिनी सी गोरे गात प्यारी सारी पहरे॥
इन्द्रजीत धनुष सों कही न परत छबि,
आनन झलक चहुँ ओर ऐसी छहरे।
गहगही पंचरंग महमही सोंधे सनी,
लहलही लसैं ये लहरिया की लहरें॥

---

१ चोखी = अच्छी। २ चारु = सुन्दर। ३ कंचन = सोना। ४ छोर = किनारे।

१४—कल्याण मिश्र



कल्याण मिश्रजी का जन्म वि० सं० १६३५ के लगभग ओरछे में हुआ था। आप जगत्प्रसिद्ध कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र के अनुज* थे। आप भारद्वाज गोत्रीय मिश्र थे। आपके पूर्वजों तथा वंश आदि के सम्बन्ध में 'सुकवि-सरोज' प्रथम भाग में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है अतः यहाँ उनहीं बातों को फिर दुहराना निरर्थक ही सा जान पड़ता है।

---

* कवीन्द्र केशवदासजी ने अपने कवि-प्रिया नामक ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन किया है:—

जिनको मधुकरशाह नृप बहुत कियो सनमान;
तिनके सुत बलभद्र बुध प्रकटे बुद्धि-निधान।
बालहि ते मधुशाह नृप तिनसों सुन्यो पुरान;
तिन के सोदर द्वै भए केशवदास कल्यान।

महाकवि कल्यानजी के प्रपौत्र कवि हरिसेवकजी मिश्र अपने 'कामरूप कथा महाकाव्य' नामक ग्रन्थ में भी इस प्रकार लिखते हैं:—

कृष्णदत्त सुत गुन जलधि, कासिनाथ परमान;
तिन के सुत जु प्रसिद्ध हैं केशवदास कल्यान।
कवि कल्यान के तनय हुव परमेश्वर इहि नाम,
तिन के पुत्र प्रसिद्ध हुव प्रागदास अभिराम।
तिन सुत हरिसेवक कियौ यह प्रबन्ध सुखदाय;
कविजन भूल सुधारबी अपनो चातुरताय।

—लेखक।

आपका कविता-काल सं० १६६० वि० के लगभग माना जाता है। सुबुध मिश्रबन्धुओं ने आपको 'अमरकोष भाषा' का रचयिता माना है। अभी तक मुझे आपके किसी भी ग्रन्थ का पता नहीं चला है, खोज की जा रही है और सम्भव है कि आपके वंशजों के पास जो कि ओरछा राज्य ही में चिरपुरा नामक ग्राम में रहते हैं, आपके ग्रन्थों का कुछ शोध लग जावे। कवीन्द्र केशव और बलभद्रजी के ग्रन्थ अब तक खोज में मिल रहे हैं और यह अनुमान करना अनुपयुक्त नहीं है कि कल्याण कवि ने भी ग्रन्थ-रचना की होगी। आपके प्रपौत्र हरिसेवकजी मिश्र के कथन "कवि कल्यान के तनय हुव······"से भी हमारी धारणा दृढ़ होती जाती है।

'शिवसिंह सरोज' में आपका एक कवित्त छपा हुआ है। जब तक आपकी और कविताएँ उपलब्ध नहीं होतीं पाठक इसी पर सन्तोष करें। प्रस्तुत कवित्त से भी आपके अच्छे कवि होने का पता चलता है। वह इस प्रकार है:—

नैन जग राते माते, प्रेममय देखियत,
आनन जम्हात ठौर ठौरन खगात है;
कजरा[1] कुटिल[2] लागे, अधरनि[3] ओर कोर.
सकुच सरम नहीं सोहैं सोहैं[4] खात है।
केशव कल्यान प्रानपति जानि पाए, जाहु,
नेकु[5] पहिचानी सब हो तिहारी बात है;
छील छील बतियाँ न छैल बर बोलौ कहूँ,
कर[6] के छिपाए ते छपाकर[7] छिपात है।

१ कजरा = काजल। २ कुटिल = टेढ़ा। ३ अधरनि = ओठों में। ४ सौंहैं = सौगन्ध। ५ नेकु = थोड़ा ही। ६ कर = हाथ। ७ छपाकर = चन्द्रमा।

१५—बालकृष्ण मिश्र



लकृष्णजी मिश्र का जन्म सं० १६३७ वि० के लगभग ओरछे में हुआ था। आप महाकवि बलभद्रजी मिश्र के पुत्र तथा जगत्प्रसिद्ध कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र के भतीजे थे।

शिवसिंह-सरोज[1] और मिश्रबन्धु-विनोद[2] में आपको त्रिपाठी लिख दिया है। किन्तु यह स्पष्ट लिखा है कि आप बलभद्रजी के पुत्र थे। प्रतीत होता है, 'सरोज' में भूल से मिश्र के स्थान पर त्रिपाठी छप गया होगा,

---

१ शिवसिंह-सरोज—

४१, बालकृष्ण त्रिपाठी (१) बलभद्रजी के पुत्र और काशीनाथ कवि के भाई। सं० १७८८ में उ० इन्होंने रसचन्द्रिका नामक पिंगल बहुत सुन्दर बनाया है।

२ मिश्रबन्धु-विनोद—

नाम (२११) बालकृष्ण त्रिपाठी

ग्रन्थ—रसचन्द्रिका (पिंगल)

जन्म-संवत्—१६३२

रचना-काल—१६५७

विवरण—बलभद्र के पुत्र। यह केशवदास के भतीजे नहीं हो सकते, क्योंकि वह मिश्र थे। साधारण श्रेणी के कवि थे।



और फिर 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' की कहावत के अनुसार अन्य ग्रन्थकारों ने बिना इस बात का विवेचन किये कि वास्तव में आप मिश्र हैं या त्रिपाठी, यदि त्रिपाठी हैं तो बलभद्रजी के पुत्र कैसे, आदि बातों पर भली प्रकार प्रकाश नहीं डाला और ज्यों-का-त्यों ही लिख दिया है। सुबुध मिश्र बन्धुओं ने अवश्य इतना लिखा है कि यह केशवदास के भतीजे नहीं हो सकते, क्योंकि वह मिश्र थे। किन्तु कविता आदि सब ही बातों पर विचार करने से मुझे तो यही जान पड़ता है कि मिश्र के स्थान पर त्रिपाठी भूल से लिख गया होगा।

'शिवसिंह-सरोज' में बालकृष्ण नाम के दो कवि माने गये हैं। किन्तु कविता के देखने से जान पड़ता है कि ये दोनों कवि एक ही थे। इनकी कविता में महाकवि बलभद्र की कविता का आभास स्पष्ट दिखलाई देता है।

सरोजकारों ने आपके भाई को भी कवि होना लिखा है, किन्तु नाम लिखने में यहाँ फिर भूल कर दी गई है। आपके भाई का नाम काशीनाथ लिखा है, जो ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि महाकवि बलभद्रजी मिश्र के पिता का नाम स्वयं काशीनाथ मिश्र था। प्रतीत होता है, काशीराम या और कुछ नाम के स्थान में काशीनाथ भूल से लिख दिया गया है। अस्तु।

आपने रसचन्द्रिका (पिंगल) नामक ग्रन्थ की रचना की है। आपका कविता-काल १६६० वि० से १७०० वि० तक माना जाता है। आपकी कविता के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

संपति सुमति नीकी, बिपति सुधीर नीकी,
गंगा-तीर मुक्ति नीकी, नीकी टेक राम की;
पतिव्रता नारि नीकी, परहित बात नीकी,
चाँदनी सुराति नीकी, नीकी जीति काम की।
'बालकृष्ण' बेदबिद[1], उग्र[2] नीकी भूसुर की,
भक्ति नीकी, नीकी है रहनि हरि धाम की।
अगन की हानि नीकी[3], ताल की मिलनि नीकी,
सुर मिली तान नीकी[4], प्रीति नीकी राम की[5]।

× × × × ×

हरि कर दीपक बजावैं संख सुरपति,
गनपति झाँझ भैरों झालर[6] झरत हैं;
नारद के कर बीन[7] सारद जपत जस,
चारि मुख चारि वेद विधि उच्चरत हैं।
षटमुख रटत सहस्र मुख सिव-सिव,
सनक सनंदन सु पाँयन परत हैं;
'बालकृष्ण' तीनि लोक, तीस और तीनि कोटि[8],
ऐते सिवसंकर की आरती करत हैं।

---

१ बेदबिद = वेदविज्ञ, वेद जानने वाला। २ उग्र = उच्चता, बड़प्पन। ३ अगन की हानि नीकी = अगण अक्षरों की हानि या कमी ही अच्छी है। ४ सुर······नीकी = सुर में मिली हुई ही तान अच्छी मालूम होती है। ५ प्रीति······की = राम की प्रीति या भक्ति अच्छी होती है। ६ झालर = वाद्य विशेष, जो पूजा के समय बजाया जाता है। ७ बीन = वीणा। ८ तीनि और तीस कोटि = तैंतीस करोड़।



रसचन्द्रिका (पिंगल)

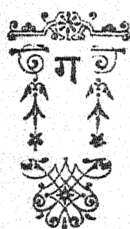
(छप्पय)

मूढ़ बुद्धि परिहरिय[1] होय पर दुःख दयामय ;
रमित जोग रस माहिं दमित मन बच क्रम निरभय ।
भक्ति हेत निज राम रचेउ जे परम सुखद नर ;
रिसि[2] न होय जनु कबहि तिहूँ पुर ऊपर सुन्दर ।
सुभ ज्ञान ध्यान बैराग रत तोष जोर तृष्णाहिं सिखित ;
तिन तीन पाँच षट बस करिय सुभ मूरति नरमय लिखित ।
पंडित चित लखि दौर करत उर भरम सफर[3]-भर ;
जगत बसीकर अजिर[4] दमित रति-पति कर गत सर ।
ललित खंज[5] गति सुढर[6]-सहित अंजन पिय मनहर ;
मरम भेद कहँ सदर[7] नाहिंन त्रिभुवन समता कर ।
अति रूप-रासि गुन सकल घर नर मोहनमय मंत्र पर ;
बदत[8] बाल कवि रसिक वर पंकज-दल[9]-सम[10] नयनवर[11] ।

---

१ परिहरिय = त्यागिए, छोड़िए। २ रिसि = क्रोधित । ३ सफर = भ्रमण करता है, चलता है। ४ अजिर = आँगन । ५ खंज = एक पक्षी का नाम । ६ सुढर = सुडौल । ७ सदर = मुख्य, उर्दू शब्द है। ८ बदत = कहते हैं । ९ पंकज-दल = कमल के पत्र । १० सम = समान। ११ नयनवर = श्रेष्ठ नेत्र ।

१६—गदाधर भट्ट



गदाधर भट्ट बुन्देलखण्डी का जन्म और कविताकाल अनुमानतः क्रमशः सं० १६२० और सं० १६६० वि० माना गया है । आप तैलङ्ग ब्राह्मण थे । आपने (१) बानी तथा (२) ध्यानलीला नामक ग्रन्थों की रचना की है । आपकी रचनाएँ सरस हैं ।

उदाहरण:—

रक्त[1] पीत[2] सित[3] असित[4] लसत अम्बुज[5] वन सोभा ।
टोल-टोल मद लोल[6] भ्रमत मधुकर मधु लोभा ।
सारस अरु कलहंस[7] कोक[8] कोलाहल कारी ।
पुलिन[9] पवित्र विचित्र रचित सुन्दर मनहारी ॥

---

१ रक्त = लाल । २ पीत = पीला । ३ सित = श्वेत, सफेद । ४ असित = काला । ५ अम्बुज = जल से उत्पन्न हुई वस्तु, कमल, शंख, वज्र, ब्रह्मा । ६ लोल = हिलता हुआ । ७ कलहंस = राजहंस । ८ कोक = चकवा पक्षी । ९ पुलिन = तट, किनारा, पानी के भीतर से हाल की निकली हुई पृथ्वी ।

१७—अमरेश

अमरेश कवि का जन्म प्राय: सं० १६३५ वि० में मोठ (झाँसी) के समीप किसी ग्राम में हुआ था। कोई उन्हें ब्रह्मभट्ट कहते हैं तो कोई कायस्थ; कुछ लोग उन्हें सिमथर दरबार का कवि मानते हैं किन्तु निश्चयात्मक रूप से अभी इन महानुभाव के सम्बन्ध में तब तक कुछ विशेष नहीं लिखा जा सकता जब तक इनके ग्रन्थ प्राप्त न हो सकें या खोज कर इनकी कविताओं का संग्रह किया जा सके। दतिया में इन महानुभाव के कवित्तों का अधिक प्रचार है, दो-एक बार मैंने भी कई सज्जनों से दतिया में आपके कवित्त सुने हैं। आपका कविताकाल प्राय: सं० १६६० वि० से माना जाता है, आपके किसी ग्रन्थ का पता अब तक नहीं चल सका है। आपकी रचनाओं में बुन्देलखण्डी मुहावरे खूब सुन्दरता से व्यवहृत किए हुए मिलते हैं। रचनाएँ सरस हैं:—

उदाहरण:—

मानुस कहाय हिय हिम्मति बिहाय नित,
करै हाय हाय न सुहाय[1] पन[2] ताका है;
ऐसे बन्दे बद सों सलाह न अछात मन,
प्रेम के नसे का कीना कब हीन साका है।
कहैं अमरेश जे हैं साहब-सहूर नर,
पूरन प्रताप मता जिनकी सभा का है;

१ सुहाय = अच्छा लगे। २ पन = स्वभाव।

एक दिन फाका[1] एक होत है नफा[2] का एक-
-दिन है जफा का एक सफमसफा[3] का है।

× × × ×

कसि कुच कंचुकी में बिमल बिरचि हार,
मालती के सुमन धरेई कुँभिलाइगे;
गोरी गारु चन्दन, बगारु घनसारु अब,
दीपक उज्यारु, तम छिति पर छाइगे।
वारि धूपि अगर अगार धूपि बैठी कहा,
'अमरेश' तेरे अग्र भूलि से सुभाइगे;
सरद सुहाई साँझ आई सेज साजु, अस,
कहत सुवा[4] के आँसु वाके[5] नैन आइगे।

---

१ फाका = उपवास। २ नफा = लाभ। ३ सफमसफा = विनाश, मृत्यु। ४ सुवा = सुआ, तोता। ५ वाके = उसके।

१८—बिहारीदास



कविवर बिहारीदास मिश्र का जन्म संवत् १६५५ वि० के लगभग हुआ था। आप महाकवि केशवदासजी के ज्येष्ठ पुत्र तथा पं० काशीनाथजी मिश्र के पौत्र थे। कविवर बिहारीदासजी के बाल्य-काल के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें नहीं मालूम होसकीं, क्योंकि केशवदासजी की तरह आपने अपने सम्बन्ध में अपनी रचनाओं में विशेष रूप से कुछ नहीं लिखा है। अस्तु, जो कुछ भी बातें आपके वंशजों से तथा आपकी रचनाओं से ज्ञात हो सकी हैं वे निम्नलिखित हैं:—

केशव की मृत्यु के पश्चात् जो कि सम्भवतः सं० १६८० वि० के लगभग अनुमान की जाती है, कविवर बिहारीदास का ओड़छे में उतना आदर जितना कि आपके पूर्वजों का होता चला आया था, नहीं हुआ। इसके कई कारण हैं, प्रथम जैसा कि केशव के वंशजों से पता चलता है कि बिहारीदासजी पर उनके नाना का, जो कि ग्वालियर के आस-पास के किसी गाँव के रहनेवाले थे, बाल्यकाल ही से अधिक प्रेम था और आप अधिकतर अपने नाना के यहाँ ही रहा करते थे। केशव की मृत्यु के पश्चात् आप अपनी शिक्षा आदि के सम्बन्ध में कुछ अधिक दिनों तक वहीं रहे। वहाँ से लौटकर ओड़छा आने पर राज-दर्बार में आपका यथेष्ट मान नहीं हुआ। इसका कारण यह

जान पड़ता है कि आपके चले जाने के पश्चात् किसी और कवि ने राज-सभा में डेरा डाला हो और आपको लौटते देखकर उसने राज्य के कर्मचारियों आदि से मिलकर यह प्रयत्न किया हो कि आपकी धाक फिर से न जमने पावे, क्योंकि अपने प्रतिद्वन्द्वी के प्रति ईर्षा का होना स्वाभाविक ही है । दूसरे आपके वंश-परम्परा के वैभव को देखकर कुछ लोग आप से डाह करने लगे हों और आपका लौट आना उन्हें रुचिकर प्रतीत न हुआ हो । तीसरे राज-दर्बार में आपकी कविता के पारखी शेष न रह गये हों और आपकी बनिस्वत किसी अयोग्य व्यक्ति का अधिक सन्मान हो चला हो। अस्तु; जो कुछ भी हो आपको विवश और दुखित हो स्वाभिमान की रक्षा के हेतु ओड़छा छोड़ देना पड़ा था, जिसे आपने स्वयं भी अपनी सतसई में इस प्रकार स्वीकार किया है:—

नहिं पावस ऋतुराज यह, तजि तरवर मत भूल ।
अपत भये बिनु पाइहैं, क्यों नव दल फल फूल ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सुबीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार ॥

वहँकि बड़ाई आपनी, कत राचति मतभूल ।
बिनु मधु मधुकर के हिये, गड़ै न गुड़हर[1] फूल ॥

दिन दश आदर पाय कै, करिले आप बखान ।
जौ लगि काग सराध[2] पख तौं लगि तो सम्मान ॥

मरत प्यास पिंजरा पर्‌यो, सुआ समै के फेर ।
आदर दै दै बोलिये, बायस बलि की बेर ॥

कर लहि सूंघि सराहि हूँ, सबै रहे गहि मौन ।
गन्धी गन्धगुलाब को, गंवई[3] गाहक कौन ॥

---

१ गुड़हर = अड़हुल का पेड़ । २ सराध पख = पितृपक्ष । ३ गंवई = गँवार गाँव में ।

वे न यहाँ नागर[1] बड़े, जिन आदर तो आब।
फूल्यो अन फूल्यो भयो, गँवई गाँव गुलाब॥
चले जाहु ह्यां[2] को करै, हाथिन को व्यौपार।
नहिं जानत यहि पुर बसत, धोबी ओड़ कुम्हार॥
करि फुलेल[3] को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी मति अंध तू, अतर दिखावत काहि॥
शीतलता रस बास की, घटे न महिमा मूर।
पीनस बारे ज्यों तज्यो, सोरा जानि कपूर॥
बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़्यो न जाय॥
संगति सुमति न पावई, परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि[4] कपूर में, हींग न होय सुगन्ध॥
बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भला भलो करि छाँड़िये, खोटे ग्रह जपदान॥

—इत्यादि

ओड़छा छोड़ने के पश्चात् आप प्रथम अपने नाना के यहाँ फिर अपनी ससुराल (ब्रज में) होकर महाराज जयसिंह के दर्बार में चले गए थे। और यहाँ पर जीवन भर आपका यथेष्ट मान और वैभव रहा। कहते हैं कि एक समय महाराज जयसिंह किसी नवोढ़ा मुग्धा रानी के प्रेम में इतने बेसुध होगए कि उसे छोड़कर बाहर निकलते ही न थे उस समय निम्न-लिखित दोहा आपने उनके पास भिजवाया थाः—

---

१ नागर = चतुर आदमी, पारखी। २ ह्यां = यहाँ। ३ फुलेल = सुगन्धित तेल। ४ मेलि = मिलाकर।



"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इह काल।
अली कली ही सौं बिंध्यो आगैं कौन हवाल॥"

सुनते हैं कि इस दोहा ने महाराज जयसिंह के ऊपर जादू का सा काम किया। दोहे को पढ़ते ही उन्हें अपनी भूल का तुरन्त ही ज्ञान हो गया और उसी समय आप बाहर निकल आए और तब से आपने भली प्रकार अपना राज काज सम्हाला। किसी किसी का कहना है कि उपरोक्त दोहा कविवर ने जयपुर पहुँचकर, जब कई दिन तक पड़े रहने पर भी महाराज के दर्शन नहीं हुए और वहाँ की स्थिति का उन्हें हाल मालूम हुआ, तब किसी प्रकार महाराज तक भिजवाया था। अस्तु, कुछ भी हो, किन्तु यह स्पष्ट है कि इसी दोहे के पश्चात् जयपुर में आपका मान बढ़ा।

उपर्युक्त दोहे के उपलक्ष्य में महाराज जयसिंह ने एक सौ मुहरें पुरष्कार में दी थीं। तथा और भी दोहे सुनाने के लिए कहा। उन्होंने समय-समय पर दोहे सुनाए और यथेष्ट इनाम पाया। किसी किसी का कहना है कि सतसई के प्रत्येक दोहे पर आपको एक एक मुहर पुरष्कार में मिली थी। अस्तु, तब से बराबर आप महाराज जयसिंह के साथ रहे यहाँ तक कि लड़ाइयों पर भी आपका महाराज के साथ जाना सिद्ध होता है।

सं० १७११ वाली दक्षिण की लड़ाई में इनके साथ रहने का प्रमाण:—

"घर घर हिन्दुनि तुरकनी, देत असीस सराहि।
पतिन राखि चादर चरी, तैं राखी जयसाहि"॥

और काबुल की चढ़ाई के समयः—

यों काढ़े दल बलखतें, तैं जयसाह भुआल।
बदन अघासुर के परे, ज्यों हरि गाय गुआल॥

ये दोहे हैं।

कविवर बिहारीदास श्रीकृष्ण भगवान् के अन्तरङ्ग बिहार के उपासक थे। फिर भी उनका हृदय उदार भावों से परिपूर्ण था मत-मतान्तरों के झगड़ों और दुराग्रह को ये अच्छा नहीं समझते थे। शुद्ध प्रेमोपासक थे, आपके निम्न-लिखित दोहे इसका प्रमाण हैं:—

जपमाला छापा तिलक, सरयौ न एकौ काम।
मन कांचे नाचे वृथा, साँचे राचे राम॥
अपने अपने मत लगे, बाद मचावत सोर।
ज्यों त्यों सबही सेइवौ, एकै नंदकिशोर॥

संस्कृत-साहित्य तो बिहारी के घर ही का था, किन्तु उनकी कविता से पता चलता है कि आप फ़ारसी के भी अच्छे जानकार थे। क्योंकि फ़ारसी के शब्द (ताक़ता, इज़ाफा, किबुलनुमा, पायंदाज, ग़नी, सबील, अदब, दाग़, आदि) आपने बड़ी ख़ूबी से अपनी रचनाओं में रक्खे हैं। प्रतीत होता है आपके मत से किसी भी भाषा का शब्द यदि वह सुन्दरता से रचना में आसकता हो तो रखना अनुचित न था और यही कारण है कि आपकी सी शब्द-योजना अन्य कवियों की रचनाओं में देखने में नहीं आती।

बिहारी ने अपनी रचनाओं में प्रायः सभी अलंकारों और साहित्य के भेदों का वर्णन किया है। आप शृङ्गारी कवि थे, षट-ऋतु का वर्णन जिस सुन्दरता से आपने किया है वह देखते

और पढ़ते ही बनता है, परन्तु साथ ही आपकी नीति, उपासना और शान्त-रस की रचनाएँ भी कुछ कम चमत्कारिक नहीं हैं। वास्तव में आप अपने समय के बड़े ही सिद्धहस्त कवि थे।

अब तक आपको लेखकों ने काकोरकुल के चौबे होना लिखा है, किन्तु यह बात ठीक नहीं है। केवल इस आधार पर कि कृष्ण कवि ने, जिन्होंने कि आपकी सतसई पर टीका किया है, अपने को काकोरकुल के चौबे लिखा है अतः बिहारीदास भी काकोरकुल के चौबे होंगे, मान्य नहीं हो सकता।

हाँ, यह हो सकता है कि बिहारीदास के नाना या ससुराल वाले चौबे हों और चूंकि आपने अपना बाल्यकाल अपने नाना के यहाँ तथा जवानी ससुराल में (ब्रज में) बिताई थी और आपकी विशेष प्रसिद्धि भी उसी ओर से हुई थी, अतः आपका ठीक-ठीक इतिहास प्राप्त न होने से लोगों ने आपके नाना या ससुराल वाले महानुभावों के आस्पद के अनुसार आपको भी चौबे मान लिया हो। क्योंकि सनाढ्यों में भी चौबे (आस्पद) होते हैं और मिश्र वंश के पुत्रों का चौबों के यहाँ ब्याहा जाना सम्भव भी है। और ब्रज और ग्वालियर की ओर इनके वंशजों के एक-दो नहीं अब भी दस-पांच सम्बन्ध हैं, अतः यह भी असम्भव नहीं है कि उनका उस ओर सम्बन्ध न रहा हो। दूसरे उनका यह दोहा कि :—

जनम ग्वालियर जानिए, खण्ड बुँदेले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बस ससुराल॥

ठीक ही है, क्योंकि ग्राम फुटेरा जिसमें कि उनके वंशज आज-कल रहते हैं झाँसी से १२ मील दक्षिण की ओर है और

फुटेरा पिछोर कहलाता है। झाँसी और उसके आसपास के गाँव ग्वालियर राज्य में बहुत दिनों तक रहे, सम्भव है उस समय उन के इस गाँव का सम्बन्ध ग्वालियर प्रान्त ही से हो और इस हेतु गाँव का नाम न लिखकर केवल प्रान्त का नाम लिख देना ही आपने पर्याप्त समझा हो।

अब रहा—

जनम लियो द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराइ॥

इस दोहे में तो आपने स्पष्ट ही अपने इष्टदेव और पूज्य पिताजी को सम्बोधन किया है।

किसी किसी को यह आपत्ति है कि यदि बिहारीदास केशव-दासजी के पुत्र होते, तो दो में से कोई भी किसी न किसी के सम्बन्ध में कुछ न कुछ अवश्य लिख जाते। इसके लिए केशव-दासजीसे तो आशा करना सम्भव ही नहीं, क्योंकि उन्होंने अपने से बड़ों का गुणगान तो अवश्य किया है किन्तु अपने से छोटों का कहीं भी नहीं, यहाँ तक कि अपने अनुज कल्यान के विषय में भी कोई विशेष बात उन्होंने अपने ग्रंथों में नहीं लिखी। फिर पुत्रों के विषय में भला लिखने ही क्यों लगे। दूसरे केशव की मृत्यु के समय बिहारीदासजी की अवस्था अधिक से अधिक २०, २२ वर्ष की होगी और उस समय उनकी प्रतिभा का विकास ही पूर्णरूप से न हुआ होगा। अब रहे बिहारीदास, सो यह सतसई के पढ़नेवालों से छिपा नहीं है कि उन्हें झूँठी ख़ुशामद करना नहीं आता था। उनका सिद्धान्त कविता से दूसरों का उपकार करने का था कीर्ति कमाना नहीं। "नेकी कर और कुएं में

डाल" वाली मसल को उन्होंने अन्त समय तक बड़ी ख़ूबी से निबाहा। उन्हें आत्मश्लाघा से चिढ़सी थी यहाँ तक कि अपने आश्रयदाता महाराज जयसिंह तक के लिए केवल दो एक वास्तविक घटनाओं के विषयों के दोहों को छोड़कर कहीं भी उनकी प्रशंसा के दोहे नहीं लिखे। और अपने लिए तो केवल एक ही दोहा "जनम लियो द्विजराजकुल" लिखकर संतोष कर लिया। और यही एक दोहा उनके इतिहास के लिए बहुत कुछ है।

किन्हीं किन्हीं को केशव और बिहारी के ग्रन्थों की भाषा* की विभिन्नता पर आपत्ति है। किन्तु शंका करने के पूर्व यदि

---

*विद्यावाचस्पति श्री० पं० शालग्रामजी शास्त्री साहित्याचार्य्य लखनऊ ने भी लेखक के 'सुकवि सरोज' के प्रथम भाग पर सम्मति देते हुए लिखा था कि:—

"............अनेक नई ज्ञातव्य बातें इस पुस्तक से हिन्दी संसार के सामने आई हैं। ग्रन्थकार ने केशवदासजी के वंशवृक्ष तथा अन्य प्रमाणों द्वारा सतसई के रचयिता श्री बिहारीदास को केशवदासजी का पुत्र सिद्ध किया है। कुछ लोग केशव और बिहारी के भाषा-भेद के कारण इन्हें पिता-पुत्र मानने को तैयार नहीं होते; आपने इसके समाधान का भी यत्न किया है; परन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि 'बिहारी सतसई' की भाषा ब्रजभाषा नहीं बल्कि शुद्ध बुन्देलखण्डी है। सतसई पर 'बिहारी रत्नाकर' नाम की टीका लिखने वाले (स्व०) श्री० बा० जगन्नाथदासजी रत्नाकर ने अपने प्राचीन भाषा बिषयक प्रौढ़ परिज्ञान के बल पर अनेक उदाहरणों और सतसई की अनेक प्राचीनतम पुस्तकों के प्रामाणिक पाठों के बल पर यह पूरी तरह सिद्ध कर दिया है कि सतसई की भाषा बुन्देलखण्डी है। इससे प्रकृत पुस्तक के रचयिता द्विवेदीजी की बात ही प्रमाणित होती है............।"



स्थिति पर भली प्रकार विचार कर लिया जाय तो यह शंका सहज ही में समाधान हो जाय।

यह तो स्पष्ट ही है कि केशव का समस्त जीवन बुन्देलखण्ड ही में बीता और बिहारीदास का कुछ बुन्देलखण्ड में और कुछ यत्र-तत्र। और उसी के अनुसार उनकी कविताएँ भी हुईं फिर भी ठेठ बुन्देलखण्डी शब्दों (लखबी, ब्योरति, जानबी, प्यौसाल, थोरेई, चौंसुआ, भोड़र, चुपरी, सारोट, आदि) ने बिहारी का साथ नहीं छोड़ा और अब तो विद्वानों ने भी यह स्वीकार कर लिया है कि सतसई की भाषा बुन्देलखण्डी ही है, फिर भी यदि विशुद्ध ब्रजभाषा में भी उनकी कविता हुई होती तो भी केवल भाषा के आधार पर उनके पिता-पुत्र के सम्बन्ध में शङ्का करना अनुचित ही सा है। देखिए बाबू गोपालचन्द्र (गिरधरदास) और उनके पुत्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एक ही स्थान में आजन्म रहे, परन्तु इन महानुभावों की भाषा में उससे कहीं अधिक अन्तर है जितना कि केशव और बिहारी की भाषा में। अस्तु, ये सब शङ्काएँ निर्मूल ही सी हैं और यह ठीक जान पड़ता है कि कविवर बिहारीदास महाकवि केशवदासजी ही के पुत्र थे। उनके वंशजों से यह भी पता चला है कि बिहारीदास की मृत्यु के पश्चात्, जो कि सं० १७२० वि० के लगभग अनुमान की जाती है, उनके पुत्रादि भी फुटेरा* लौट आए थे, किन्तु बिहारी के

---

* फुटेरा नामक ग्राम झाँसी से १३ मील और खजराहा जी० आई० पी० से ९ मील है। इस ग्राम की ज़मींदारी केशव के वंशजों के अधिकार में अब भी है।

—लेखक।

पश्चात् उनके वंशजों पर एक प्रकार का श्राप सा पड़ा और उनका वैसा वैभव न रहा तब से उनके वंशज भोले-भाले ग्राम-वासी बनकर अपनी साधारण एक गाँव की ज़मींदारी ही पर शान्तिपूर्वक अपना अपना जीवन निर्वाह करते चले आ रहे हैं और उन्हें इस सांसारिक उथल-पुथल का कुछ भी पता नहीं है। और यही कारण है कि वे हिन्दी-संसार के समक्ष उपर्युक्त-कुल के वंशज होते हुए भी अब तक अपना परिचय रख सकने में समर्थ नहीं हो सके।

कविवर बिहारीदास का कविता-काल सं० १६८० वि० से माना जाता है। आपके केवल एकमात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' का पता चलता है जिसमें कि ७१९ दोहे हैं। इस ग्रन्थ के समाप्त होने के विषय में आप निम्न-लिखित दोहा लिखते हैं:—

९ १ ७ १
संवत् ग्रह शशि जलधि छिति, छठि तिथि वासर चंद।
चैत मास, पख कृष्ण में, पूरन आनँद कंद॥

अर्थात् सं० १७१९ वि० में आपने इसे समाप्त किया था इसके अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता। किन्तु आपकी अमरता के हेतु यह अपूर्व ग्रन्थ बहुत कुछ है। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। वास्तव में आपने इस एक ही ग्रन्थ में सब कुछ भर दिया है। कितनी भावुकता, कितना लालित्य और कितना चमत्कार आप इसमें भर गये हैं उसका अनुमान केवल इसी से हो सकता है कि अब तक आपकी सतसई की लगभग २५, ३० गद्यात्मक और पद्यात्मक टीकाएँ निकल चुकी हैं, किन्तु फिर भी हिन्दी भाषा-भाषी व्यक्तियों को



उनसे तृप्ति नहीं। हिन्दी-साहित्य में 'रामचरित मानस' के बाद यह पहिली पुस्तक है जिसका इतना प्रचार और मान है।

तन्त्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे, जे बूड़े सब अङ्ग॥
मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झाँई[1] परै, श्याम हरित[2] दुति[3] होय॥
अपने अँग के जानि कैं, जोबन-नृपति प्रबीन।
स्तन, मन, नैन, नितम्ब, कौ बड़ौ इजाफा कीन॥
सनि-कज्जल चख[4] झख[5] लगन, उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेसु सबु देहु॥
कनकु[6] कनक[7] तैं सौगुनी मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएँ बौरात[8] है इहि पाएँ बौराइ॥
लोभ-लगे हरि रूप के, करी साँटि[9] जुरि, जाइ।
हौं इन बेची बीच हीं,, लोइन[10] बड़ी बलाइ॥
चिलक[11] चिकनई, चटक[12] सौं, लफति[13] सटक[14] लौं आइ।
नारि सलौनी साँवरी, नागिन लौं डसि जाइ॥
पट की ढिग[15] कत ढाँपियति, सोभति सुभग सुवेष।
हद[16] रदछद[17] छबि देति यह, सद[18] रदछद[19] की रेख॥

---

१ झाँईं = परछाँईं। २ हरित = हरी। ३ दुति = द्युति, शोभा। ४ चख = चक्षु, आँख। ५ झख = झष, मछली, मीन राशि। ६ कनकु = सोना। ७ कनक = धतूरा। ८ बौरात = पागल हो जाना। ९ साँटि = हेलमेल। १० लोइन = आँख। ११ चिलक = चमक। १२ चटक = चटकीलापन, चंचलता। १३ लफति = लचकती हुई। १४ सटक = पतली लचकीली छड़ी। १५ ढिग = किनारा, कोर। १६ हद = हद्द, सीमा। १७ रदछद = ओठ। १८ सद = सद्य। १९ रदछद = दाँतों का निशान।



फिरि फिरि बूझति, कहि कहा, कह्यौ साँवरे गात।
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यौं बात॥

सोवत, जागत सुपन बस रस, रिस चैन कुचैन।
सुरति श्यामघन की, सुरति, बिसरैं हूँ बिसरै न॥

सोहत संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु[1]॥

ललित श्याम लीला,[2] ललन, बढ़ी चिबुक[3] छबि दून[4]।
मधु-छाक्यौ मधुकरु परयौ, मनौ गुलाब-प्रसून॥

तिय-तिथि तरुन-किसोर[5] वय, पुन्यकाल-सम दोनु।
काहू पुन्यनु पाइयतु, बैस सन्धि-संक्रोनु[6]॥

जाति मरी बिछुरी घरी, जल सफरी[7] की रीति।
खिन खिन होति खरी खरी, अरी जरी[8] यह प्रीति॥

मैं तपाय त्रयताप सौं, राख्यौ हियौ हमामु[9]।
मति[10] कबहुँक आऐं यहाँ, पुलकि पसीजै श्यामु॥

आड़े[11] दै आले[12] बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहसुक कै सनेह-बस, सखी सबै ढिंग जाति॥

श्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा[13] तीरु।
अँसुवनु करति तरौंस[14] कौ, खिनकु[15] खरौहौं[16] नीरु॥

---

१ जोगु = साथ मेल। २ लीला = नीले रँग का गोदना। ३ चिबुक = ठोड़ी। ४ दून = दूनी। ५ किसोर = किशोरावस्था ११ से १५ वर्ष तक रहती है। ६ बैस सन्धि-संक्रोनु = वयस की सन्धि का संक्रमण। ७ सफरी = मछली। ८ जरी = भाड़ में जली, निगोड़ी। ९ हमामु = स्नान करने का कमरा। १० मति = कदाचित् कभी, इस भाव में व्यवहृत है। ११ आड़े = बीच में। १२ आले = गीले। १३ तरनिजा = यमुना। १४ तरौंस = तट का निकट। १५ खिनकु = क्षण भर। १६ खरौहौं = खारा।

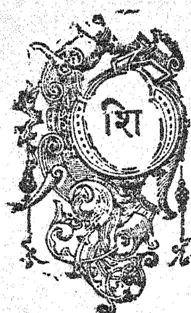


प्रान प्रिया हिय में बसै, नख रेखा ससि भाल।
भलौ दिखायौ आइ यह, हरि-हर-रूप रसाल॥
सीस मुकट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक[1] मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल॥
भृकुटी मटकनि, पीतपट, चटक लटकती[2] चाल।
चलचख[3] चितवनि चोरि चितु लियौ बिहारीलाल॥
संगति दोषु लगै सबनु, कहेति साँचै बैन।
कुटिल[4] बंक[5] भ्रुव संग भए, कुटिल-बंक गति बैन॥
चितवनि भोरे भाइ की, गोरैं मुँह मुसकानि।
लागति लटकि अरी गरै, चित खटकति नित आनि॥
मार-सुमार करी[6] डरी, मरी[7] मरीहिं[8] न मारि।
सींचि गुलाब घरी घरी; अरी बरीहिं न बारि॥
नर की अरु नल-नीर[9] की, गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ॥
भूषन-भारु संभारि है, क्यों इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा ही कैं भार॥
कहत सबै, बेंदी दियैं, आँकु[10] दसगुनौ होतु।
तिय लिलार[11], बेंदी दियैं, अगिनितु बढ़तु उदोतु[12]॥

---

१ बानक = शृङ्गार, वेष, बनाव। २ लटकती = झूमती हुई। ३ चलचख = चंचल। ४ कुटिल = टेढ़ी आकृति वाली। ५ बंक = टेढ़े। ६ मार-सुमार-करी = कामदेव द्वारा मारी गई, सताई गई। ७ डरी मरी = मरी हुई पड़ी हूँ। ८ मरीहिं = मरी हुई को। ९ नल-नीर की = नल के पानी की। १० आँकु = अङ्क। गिनती लिखने के सांकेतिक अक्षर। ११ तिय-लिलार = स्त्री के लिलार पर। १२ उदोतु = शोभा।

१६—शिवलाल मिश्र



शिवलाल मिश्र, ओरछा, कवीन्द्र केशवदास मिश्र के अग्रज महाकवि बलभद्र मिश्र के पौत्र थे। आपका जन्म तथा कविताकाल अनुमानतः क्रमशः सं० १६६० वि० और सं० १६८० वि० है। आपके बनाये हुए किसी ग्रन्थ का पता नहीं चल सका है किन्तु आपकी एक घटना अधिक प्रसिद्ध है, सुनते हैं आप एक बार जगन्नाथपुरी श्री जगन्नाथजी के दर्शनको गये थे। उन दिनों वहाँ यह नियम था कि जो अठारह रुपया चढ़ावे वही श्री जगन्नाथजी के दर्शन कर सके अन्यथा नहीं। आपको यह प्रथा अनुचित प्रतीत हुई आपने तुरन्त एक भड़ौआ बनाकर सुना डाला, देखिए वह इस प्रकार है:—

जाट[1], जुलाहे[2], जुरे दरजी[3]
मरजी में मिल्यो चक चूकि चमारौ[4]।
दीनन की कहु कौन सुनै,
निसि-द्यौस[5] रहै इनहीं कौ अखारौ॥
को 'शिवलाल' की बात सुनै,
दीनानाथ के द्वार पै कोऊ पुकारौ।
ऐसे बड़े करुणाकर को,
इन पाजिन ने दरबार बिगारौ॥

---

१ जाट = धन्ना जाट। २ जुलाहे = कबीरदासजी जुलाहा। ३ दरजी = नामा दरजी। ४ चमारौ = रैदास चमार से अभिप्राय है। ५ निसि द्यौस = रात दिन।

२०—अग्रदास स्वामी



अग्रदास स्वामीजी का जन्म और कविताकाल अनुमानतः क्रमशः सं० १६५० वि० और १६८० वि० है। आपके सम्बन्ध की विशेष बातें मालूम नहीं हो सकी हैं। 'शिवसिंह सरोज' और 'मिश्र-बंधु-विनोद' में और अग्रदास नामक कवि का होना लिखा है और उन्हें नीति-सम्बन्धी कुण्डलियाँ, छप्पय और दोहों का रचयिता माना है। मुझे अन्वेषण में इन महानुभाव की एक हस्तलिखित प्रति मिली है जिसको कि सं० १८८ . वि० में पुजारी धर्मदासजी ने लिखा था इस पुस्तक के अन्त मे इस प्रकार लिखा हुआ है:—

इति श्री अग्रदास स्वामीजी कृत कुड़रिया सम्पूर्ण समाप्तः। शुभमस्तु मंगलंददातः।

याद्दशी पुस्तकं द्दष्ट्वा ताद्दशी लिखतं मया।
यदि शुद्धमशुद्धंवा मम दोषोण दीयतेः॥

अथ शुभ संवत् १८६७ माशोत्तमे माशे आश्वन माशे शुभ शुक्ल पक्षे पर्वणातिथौ १३ त्रियोदश्यां गुनुं वासरे ता दिना पुस्तक सम्पूर्ण लिष्यतं पं० पुजारी धर्मदास जो वाचै सुनै ताकौ यथा योग तसलीम जाहर होवौ करै मु० कसवा खुजरिया स्थान। इस पुस्तक में ७१ कुण्डलियाँ हैं, इन कुण्डलियों को बुन्देलखण्ड की प्रचलित कहावतों के शीर्षक देकर उन ही कहावतों पर नीति, अध्यात्म आदि विषयों पर आपने लिखा है। भाषा बुन्देलखण्डी, सरस और चित्ताकर्षक है।



उदाहरण:—

महतो[1] दुरौ[2] प्यार[3] में को कहि बैरी होय।
को कहि बैरी होय जीव माया में राचौ;
हर हीरा मन त्याग वृथा कांचहि मन राँचौ[4]।
मृग तृष्णा संसार अमर पुर लौं जो धावै;
सीतापत पद विमुख सुःख सपने नहिं पावै
अग्रदास झूँठी तो हिय के नैनन जोय[5];
महतो दुरौ प्यार में को कहिं बैरी होय।

बीतौ[6] व्याव[7] कुमार[8] को भांड़े[9] लै लै जाव।
भांड़े लै लै जाव हतो[10] धन धरती गाड़ौ,
हय गय भवन भड़ार[11] जहाँ कौ ताँही छाँड़ौ।
तात मात सुत वाम सजन सौं मिटी सगाई,
तत्त[12] तत्त कौं मिलौ हंस[13] चल गौ[14] छुटकाई।
अग्र कहैं नर गाय हरि जौलौं तन में आव,
बीतौ व्याव कुमार कौ भाँड़े लै लै जाव।

गाड़र आनी ऊन कौं बांधी चरै कपास।
बांधी चरै कपास विमुख हरि लौंन हरामी,
प्रभु प्रताप की देह तुच्छ कर खोई कामी।

---

१ महतो = मुखिया। २ दुरौ = छिपा। ३ प्यार = पियार, पुआल। ४ राँचौ = प्रेम किए हुए हैं। ५ जोय = देखो, खोलकर देखो। ६ बीतौ = होचुका। ७ व्याव = विवाह। ८ कुमार = कुम्हार। ९ भांड़े = बर्तन। १० हतो = था। ११ भड़ार = पृथ्वी में गड़ा हुआ धन। १२ तत्त = पंच तत्व। १३ हंस = जीवात्मा से अभिप्राय है। १४ चल गौ = चला गया।

जठर[1] जातना अधिक भजन बदि[2] बाहिर आयौ,
लगौ पवन संसार कृतघ्नी नाथ भुलायौ।
चाकरी चोर हाजर कवर अग्र इते[3] परआस;
गाड़र आनी ऊन कौं बाँधी चरै कपास।

सूनै घर को पाउनौ[4] ज्यों आवै त्यों जाय।
ज्यों आवै त्यौं जाय धर्म बिन धिग नर देही,
छुद्र कुटुम[5] संग्रहौ तजौ सत स्याम सनेही।
परमारथ सौं पीठ दीठ[6] स्वारथ में दीनी,
जन्म लाह[7] नहिं लहौ राम की भक्ति न चीनी[8]।
अग्र कहै सतसंग बिन कछू लाभ नहिं पाय,
सूनै घर को पाउनो ज्यों आवै त्यौं जाय॥

भुस ऊपर को लीपनौ[9] अनुवारू की भीत[10]।
अनवारू की भीति भूत की मनौ मिठाई,
बादीगर कौ बाग़ स्वप्न में नवनिधि पाई।
अजा[11] अस्त न ज्यों कंठि तुच्छ बादर की छाया,
पूरब बस्तु बिसार पछिम दिश डूँढ़ण धाया।
ज्ञान उपासन राम बिन अग्र सो ऐसी रीति;
भुस ऊपर कौ लीपनौ अनुवारू की भीत।

---

१ जठर = पेट । २ बदि = के, लिए, होड़ लगा कर । ३ इते = इतनों पर । ४ पाउनौ = पाहुनो, मेहमान, अतिथि । ५ कुटुम = कुटुम्ब, परिवार । ६ दीठ = दृष्टि, निगाह, प्रीति से तात्पर्य है । ७ लाह = लाभ । ८ चीनी = पहिचानी । ९ लीपनौ = लीपा जाना । १० भीत = दीवाल । ११ अजा……'छाया' = हस्तलिखित प्रति में ऐसा ही लिखा है यह कुछ खटकता है ।



कुतिया चोरन मिल गई को कव[1] पैरो[2] देय।
को कव पैरो देय जीव जा मिलो अविद्या,
काम क्रोध मद लोभ लगे लूटन पुर विद्या।
हतौ[3] ब्रह्म कौ अंस कुमत नीचन संग कीनौ,
लोलुप इन्द्री स्वादि सदन सूनौ कर दीनौ।
अग्र कहै तज स्वान गत नर हर पद दृढ़ सेय,
कुतिया चोरन मिल गई को कव पैरो देय।

जो दिन जाय अनन्द में जीवन को फल सोय।
‡ जीवन कौ फल सोय आनँद निधि उर में धारै,
मंत्री ज्ञान विवेक अशुभ अज्ञान निवारै।
पद्म[4] पत्र जिम रहै काल सम विषय पिछानै,
जग प्रपंच तैं दूर सत्य सीतापति जानै।
अग्र अजा[5] के स्वाद से तृप्त न देखौ कोय,
जो दिन जाय अनन्द में जीवन कौ फल सोय।

बहुत गई थोरी रयी[6] थोरेही[7] में चेत।
थोरेई में चेत अमल छूटति क्रम थोरे,
मारग विषय विसार सरक[8] सीतापति ओरे।
द्वै घटका में भूप गोविंद पद पायो,
दुरमति तजि पिंगला स्याम ढिग सेज बसायो।
अग्र आलकस[9] जिन करौ हर भजवे के हेत,
बहुत गई थोरी रयी थोरेई में चेत।

---

१ कव = कहो। २ पैरो = चौकसी, पहरा। ३ हतौ = था।
‡ 'आनँद' पर पाठ खटकता है। ४ पद्म = कमल। ५ अजा = जन्म रहित। ६ रयी = रही। ७ थोरेई = थोड़े ही में। ८ सरक...ओरे = श्री सीतापति राम की ओर ध्यान लगा। ९ आलकस = आलस।



आप न जावें सासुरे औरन कौं सिख देंय।
औरन कौं सिख देंय हियौ अपनौ नहिं सोधैं,
*नख[1] सिख जटति अज्ञान मूढ़ जग को परमोधैं[2]।
निज तन आँखन अंध; गैल औरन[3] उपदेसैं,
भव जल पार न रोस पैर कछु सकत ना लेसैं।
अग्र आप स्वारथ सबै परमारथ पूजा लेंय,
आप न जावें सासुरे औरन कौं सिख देंय।



---

* १ नख⋯⋯⋯परमोधैं = पाठ खटकता है। २ परमोधैं = शिक्षा दें, सिखावें। ३ औरन = दूसरों को।

२१—सुन्दर ब्राह्मण



न्दर ब्राह्मण ग्वालियर का जन्म प्रायः सं० १६५० वि० में ग्वालियर में हुआ था। आप शाहजहाँ बादशाह के दरबारी कवि थे और कविराय तथा फिर महाकविराय की उपाधि शाहजहाँ बादशाह से आपको मिली थी। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपका कविता-काल सं० १६८० वि० से माना जाता है। आपने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की है :—

(१) सुन्दर-शृङ्गार (नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ)

(२) सिंहासन-बत्तीसी और (३) बारहमासी

आपकी रचनाओं में शब्द चमत्कार, यमक और भाव-प्रौढ़ता का प्राधान्य रहता है। उदाहरण देखिए:—

काके गए बसन[1] पलटि आए बसन[2],
सु मेरो कछु बस न[3] रसन उर लागे हौ;
भौंहैं तिरछौंहैं कवि सुन्दर सुजान सोहैं,
कछू अलसौहैं गौहैं जाके रस पागे हौ।
परसौं[4] मैं पायँ हुते[5] परसौं[6] मैं पायँ गहि,
परसौं ये पाँय निसि जाके अनुरागे हौ;
कौन बनिता[7] के हौ जू कौन बनिताके हौ;
सु कौन बनिता के बनि ताके[8] संग जागे हौ।

---

१ बसन = सोने के लिए। २ बसन = कपड़े। ३ बस न = उपाय नहीं काबू नहीं। ४ परसौं = छुए। ५ हुते = थे। ६ परसौं = गत दिनसे पहिले का दिन। ७ बनिता = स्त्री। ८ ताके = तिसके।

२२—खेमदास



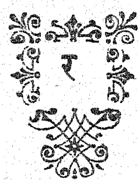
मदास या खेम कवि का जन्म प्राय: सं० १६५५ वि० में ओरछा में हुआ था। आपका कविता-काल सं० १६८० वि० के लगभग माना जाता है। आपने सुख संवाद नामक ग्रन्थ की रचना की है, आपकी रचनाओं के विशेष उदाहरण नहीं मिल सके हैं। शिवसिंह सरोज ,में यह पद आपका लिखा हुआ है :—

विलुलित[१] कर पल्लव मृदु बेनु,
हर्षित हुँकृत[२] आवत धेनु[३]।
कोटि मदन द्युति श्याम सरीर;
बिपति कल्पतरु जमुना तीर।
दच्छिन चरन चरन पर धरे;
बाम अंस भ्रू[४] कुण्डल करे।
बरुह चंद बन धातु प्रवाल;
मनि मुक्ता गुंजाफल[५] माल।
देखन चलहु खेम नँदलाल;
ललित[६] त्रिभंगी[७] मदन गुपाल।

---

१ बिलुलित=हिलता है। २ हुँकृत=रम्भाती हुई। ३ धेनु=गाय। ४ भ्रू=भौंह। ५ गुंजा फल=घुंघची। ६ ललित=सुन्दर, मनोहर। ७ त्रिभंगी=जिसमें तीन जगह बल पड़ता हो; खड़े होने का वह स्वरूप जिसमें पेट, कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहा है।

२३—रसिकदेव



सिकदेव का जन्म सं० १६७० वि० के लगभग बुन्देलखण्ड में हुआ था। श्रीसहचरिशरणजी ने अपने 'ललितप्रकाश' नामक ग्रन्थ में गुरु प्रणालिका लिखते हुए आपके सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

रसिकदेव रसमीन सनाचढ़ पीन प्रेम सों;
जनम बुँदेलाखण्ड विपिन पुन भजन नेम सों।
कीन्हें शिष्य अनेक एक-ते-एक अमायक;
तिन बिच मिथुन प्रसिद्ध सिद्ध खुनि सब विधि लायक।

आप श्री पं० नरहरिदेवजी के शिष्य थे। आपका रचनाकाल सं० १७०० वि० के लगभग माना जाता है। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की है, जिनकी नामावली निम्नलिखित है—

(१) बानी, (२) प्रसाद-लता, (३) भक्ति-सिद्धान्त-मणि (४) पूजा-विलास, (५) एकादशी-महात्म्य, (६) रसकदम्ब-चूड़ामणि, (७) पूजा-विभास, (८) कुञ्ज-कौतुक, (९) माधुर्य-लता, (१०) रतिरङ्गलता, (११) सुआ-मेना-चरित-लता, (१२) आनन्द-लता, (१३) हुलास-लता, (१४) अतन-लता, (१५) रत्न-लता, (१६) रहसि-लता, (१७) कौतुक-लता, (१८) अद्भुत-लता, (१९) विलास-लता, (२०) तरङ्गलता, (२१) विनोद-लता, (२२) सौभाग्य-लता, (२३) सौन्दर्य-लता, (२४) अभिलाष-लता, (२५) मनोरथ-लता, (२६) सुखसार-लता, (२७) चारु-लला, (२८) अष्टक, (२९) रससार, (३०) ध्यानलीला, (३१) बाराहसंहिता और (३२) अष्टक।



'शिवसिंह-सरोज' तथा 'मिश्रबन्धु-विनोद' में आपको रसिकदास, और आपके गुरु को नरहरिदास लिखा है, किन्तु गुरु-प्रणालिका, से आपका नाम रसिकदेव और आप के गुरू का नाम नरहरिदास ही ठीक जान पड़ता है।

आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(पद)

सुमिरो नर नागर बर सुन्दर गोपाल लाल;
सब ही दुख मिटि जै हैं चिन्तित लोचन बिसाल।
अलकन की झलकनि लखि, पलकन-गति भूलि जात,
भ्रू-विलास[1] मंद हास रदन छदन अति रसाल।
निन्दत रवि कुण्डल छबि गंड[2] मुकुर[3] झलमलात;
पिच्छ-गुच्छ[4] कृत वतंस[5] इन्दु बिमल बिन्दु भाल।
अङ्ग-अङ्ग जित अनङ्ग माधुरी तरङ्ग रङ्ग;
विगत मद गयन्द[6] होत देखत लटकीली चाल।

रसिकदेव

रतन रसन पीत बसन चारु हार बर सिंगार;
तुलसी-कुसुम खचित[7] पीन[8] उर नवीन माल।
ब्रजनरेस बंस दीप, वृन्दावन वर महीप,
श्री वृषभान मान्यपात्र सहज दीन जनदयाल।
रसिक रूप रूपरासि, गुन-निधान जान राय;
गदाधर प्रभु जुवती जन मुनि-मन-मानस-मराल[9]।

इत्यादि।

---

१ भ्रू-विलास = भौंहों का मटकाना। २ गंड = कपोल। ३ मुकुर = शीशा। ४ पिच्छ-गुच्छ = मोरपंख के गुच्छे। ५ वतंस = कलगी। ६ गयन्द = बड़ा हाथी। ७ खचित = जड़ी हुई। ८ पीन = स्थूल, मोटी। ९ मराल-हंस।

द्वितीय खण्ड



[सं० १००० वि० से सं० १७०० वि० तक]

के

अन्य कवि-गण



२४—नन्द कवि

जन्म स्थान—कालिंजर (बांदा)
जन्म संवत्—सं० १०६० वि०
कविताकाल—सं० ११०० वि०
रचित ग्रन्थों की नामावली—स्फुट

२५—जगनिक

जन्म स्थान—महोबा
जन्म संवत्—सं० ११५० वि०
कविताकाल—सं० ११६० वि०
रचित ग्रन्थों की नामावली—आल्हखण्ड, महोबाखण्ड

२६—अजबेस

जन्म स्थान—रीवाँ
जन्म संवत्—सं० १५७० वि०
कविताकाल—सं० १६०० वि०
रचित ग्रन्थों की नामावली—स्फुट

महाराजा वीरभानुसिंह रीवाँ नरेश के आश्रित कवि थे 'शिवसिंह सरोज' में भूल से आपको जोधपुर का कवि लिख दिया है। आपकी रचनाएँ ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। देखिए

उदाहरण :—

बढ़ी बादशाही जैसे सलिल प्रलै के बढ़ैं;
राना, राव उमराव सबको निपात भो;
बेगम बिचारी बही, कतहूँ न थाह लही,
बाँधौगढ़ गाढ़ो गूढ़ ताको पच्छपात भो।
शेरशाह सलिल प्रलै को बढ़्यो अजवेस,
बूढ़त हुमायूँ के बड़ोई उत्पात भो;
बलहीन बालक अकब्बर बचाइए को,
वीरभान भूपति अछैवट को पात भो।

२७—विष्णुदास

जन्म स्थान—ग्वालियर
जन्म संवत्—सं० १४७० वि०
कविताकाल—सं० १४९५ वि०
रचित ग्रन्थों की नामावली—महाभारत कथा स्वर्गारोहण
पाण्डव वंशी राजा डोंगरसिंह के आश्रित थे।

२८—विद्या पण्डित ब्राह्मण

जन्म स्थान—ग्वालियर
जन्म संवत्—सं० १५०० वि०
कविताकाल—सं० १५३० वि०
रचित ग्रन्थों की नामावली—स्फुट



२९—रामदास सारस्वत ब्राह्मण

जन्म स्थान—ग्वालियर
जन्म संवत्—१५८०
कविताकाल—१६२०
रचित ग्रन्थों की नामावली—संगीत विषयक ग्रन्थ
बादशाह अकबर के दरबार में जाया करते थे।

३०—मोहनलाल मिश्र

जन्म स्थान—चरखारी
जन्म संवत्—१५९०
कविताकाल—१६२०
रचित ग्रन्थों की नामावली—शृङ्गार-सागर
चूरामणि मिश्र के पुत्र महाराज विक्रमादित्य चरखारी नरेश के आश्रित

३१—पुरुषोत्तम

जन्म स्थान—अजयगढ़
जन्म संवत्—१५९०
कविताकाल—१६२०
रचित ग्रन्थों की नामावली—राजविवेक
फतहसिंह कायस्थ के आश्रित

३२—मदनसिंह

जन्म स्थान—अजयगढ़
जन्म संवत्—१५९०
कविताकाल—१६२०
रचित ग्रन्थों की नामावली—स्फुट

३३—गणेश मिश्र

जन्म स्थान—बुन्देलखण्ड
जन्म संवत्—१६१५
कविताकाल—१६४०
रचित ग्रन्थों की नामावली—विक्रम-विलास

३४—मोहनदास मिश्र

जन्म स्थान—बुन्देलखण्ड
जन्म संवत्—१६३०
कविताकाल—१६५५
रचित ग्रन्थों की नामावली—भाव चन्द्रिका

कपूर मिश्र के पुत्र महाराजा मधुकरशाह तत्कालीन ओरछा-नरेश के आश्रित।

३५—पीताम्बर स्वामी

जन्म स्थान—बुन्देलखण्ड
जन्म संवत्—१६४०



कविताकाल—१६६५
रचित ग्रन्थों की नामावली—बानी
हरिदासजी स्वामी व्यासजी के पुत्र ।

२६—खड़गसैन कायस्थ

जन्म स्थान—ग्वालियर
जन्म संवत्—१६६०
कविताकाल—१६९०
रचित ग्रन्थों की नामावली—दान लीला दीपमालिका चरित्र
शाहजहाँ बादशाह के दरबार में जाया करते थे ।

२७—सुवंशराय कायस्थ

जन्म स्थान—सागर
जन्म संवत्—१६८०
कविताकाल—१७००
रचित ग्रन्थों की नामावली—नरसिंह पचासा
उदयशाह सागर नरेश के आश्रित

२८—रतनेस

जन्म स्थान—बुन्देलखण्ड
जन्म संवत्—१६८०
कविताकाल—१७००
रचित ग्रन्थों की नामावली—स्फुट
प्रतापशाह के पिता

तृतीय खण्ड



इसी समय की

स्त्री कवियत्रियाँ



३९—प्रवीणराय*



वीणराय वेश्या का जन्म और कविता काल अनुमानतः क्रमशः सं० १६३० वि० और सं० १६६० वि० माना गया है। ओरछा नरेश महाराज इन्द्रजीतसिंह के यहाँ, रायप्रवीन, नवरँगराय विचित्र नयना, तान तरंग, रंगराय और रंगमूरति नामक छः वेश्यायें थीं। राय प्रवीन उन सब में बड़ी ही सुन्दरी और अच्छी कवियत्री थी। वह महाराज इन्द्रजीतसिंहजी की प्रेमपात्री भी थी और वेश्या होते हुए भी अपने पातिव्रत धर्म पर अभिमान

---

* प्रवीणराय के सम्बन्ध में श्री० मेजर सरदार सज्जनसिंहजी Head A. D. C. to H. H. Sawai Mahendra Maharaja Bahadur of Orchha and conservator of forests Orchha State से कुछ विशेष बातें नहीं मालूम हुईं हैं। मेजर साहब ने बतलाया है कि ओरछा राज्य में प्रवीणराय के वंशज अब भी विद्यमान हैं और प्रवीणराय को दी गई सनदें अब भी उनके अधिकार में हैं। मेजर साहब से वे लोग मिले भी थे। अनुसन्धान किया जा रहा है पूरा और ठीक ठीक पता चल जाने पर इस विषय में फिर विस्तारपूर्वक लिखा जायगा। मेजर साहब की तो धारणा है कि प्रवीणराय वेश्या नहीं थी यही बात सनदों से सिद्ध होती है और प्रवीणराय के वंशजों से जानी जाती है। —(लेखक)।



रखती थी। उसकी सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर एक बार सम्राट् अकबर ने उसे बुला भेजा इस पर प्रवीणराय ने निम्नलिखित सवैया में अपना अभिप्राय महाराज इन्द्रजीतसिंहजी से निवेदन किया:—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें,
निज सासन सौं सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि,
हिये न लजौं लजि है सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ कौ पथ,
चित्त विचारि कहौ अब कोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता,
अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

यह सुनकर महाराज इन्द्रजीतसिंह ने उसे अकबर बादशाह के दरबार में न भेजा इस पर बादशाह ने महाराज इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया जो कि फिर कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र ने आगरे जाकर माफ़ करवा दिया था और फिर कुछ दिनों पश्चात् प्रवीणराय को भी सम्राट् अकबर के दरबार में उपस्थित कर दिया था, सम्राट् अकबर और प्रवीणराय में जो प्रश्नोत्तर हुए थे वे देखिए इस प्रकार हैं:—

अकबर—
जुबन चलत तिय-देह ते, चटकि चलत केहि हेत?

प्रवीणराय—
मनमथ वारि मसाल को, सैंति सिहारो लेत॥

अकबर—
ऊँचे ह्वै सुर बस किये सम ह्वै नर बस कीन।

प्रवीणराय—

अब पताल बस करन को, डरकि पयानो कीन ॥

इन्हें सुनकर सम्राट् अकबर, प्रवीणराय की कवित्वशक्ति पर बहुत ही प्रसन्न हुआ तब तुरन्त ही प्रवीणराय ने यह दोहा कहा:—

बिनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान ।
जूठी पातर भखत हैं, बारी, बायस, स्वान ॥

तब अकबर ने प्रसन्न होकर उसे ओरछे ही लौट जाने की अनुमति देदी ।

प्रवीणराय के कविताग़ुरु कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र थे और 'कवि-प्रिया' नामक कविता के रीति-ग्रन्थ की इसी के लिए आपने रचना की थी ।

प्रवीणराय के किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता किन्तु स्फुट काव्य यत्रतत्र सुना है जो कि मनोहर और सरस है ।

उदाहरण :—

दोहा लाल कह्यो सुनौ, चित दै नारि नवीन ।
नाको आधो बिन्दु जुत, उत्तर दियो प्रवीन ॥

(छप्पय)

कमल कोक[1] श्री फल[2] मँजीर कलधौत[3] कलस हर[4] ।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नीलधर ॥
सर वर सर बन हेम मेरु कैलास प्रकाशन ।
निसि-बासर तरुवरहि काँस कुन्दन दृढ़ आसन ॥

---

१ कोक = चकवा । २ श्रीफल = सीताफल, शरीफा । ३ कलधौत कलस = सोने के कलस । ४ हर = महादेवजी ।



इमि कहि प्रवीन जल थल अपक, अवधि भजत तिय गौरि सँग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल, इंदु शीश इमि उरज ढँग॥

× × × ×

छूटी लटैं अलबेली सी चाल,
भरे मुख पान खरी कटि छीनी।
चोरि नगारा उघारे उरोजन,
मो तन हेरि रही जो प्रवीनी॥
बात निसंक कहै अति मोहिं सों,
मोहिं सों प्रीति निरन्तर कीनी।
छाँड़ि महानिधि लोगन की,
हित मेरे सों क्यों बिसरै रसभीनी॥
कुक्कट[1] कों कोट कोट कोठरी किवार राखों,
चुन दे चिरैयन की मूद राखों जलियो[2]।
सारंगतें सारंग[3] मिलाय हों 'प्रवीणराय'
सारंग दे सारंग[4] की जोति करों थलियो[5]॥
तारापति तुम सों कहत कर जोर जोर,
भोर मत कीजियो सरोज मुद कलियो।
मोहि मिलो इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्रराज,
ऐहो चन्द्र आज नेक मन्द गति चलियो॥

× × ×

---

१ कुक्कट = मुर्गा। २ जलियो = जाली में। ३ सारंग = वस्त्र। ४ सारंग = दीपक। ५ थलियो = स्थिर।

सीतल समीर ढार, मंजन कै वनसार,
अमल अंगौछै आछे मन से सुधारिहौं;
देहौं ना पलक एक, लागन पलक पर,
मिलि अभिराम आछी, तपनि उतारिहौं।
कहत 'प्रवीनराय' आपनी न ठौर पाय,
सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौं;
जबहीं मिलेंगे मोहि इन्द्रजीत प्रान प्यारे,
दाहिनो नयन मूँदि तोहीसौं निहारिहौं।

४०—केशव-पुत्र-बधू



शव-पुत्र-बधू ओरछा, का जन्म तथा कविता-काल क्रमशः सं १६४० वि० और सं० १६७० वि० के लगभग माना गया है। आपके सम्बन्ध में विशेष बातें तो मालूम नहीं हो सकीं किन्तु सुनते हैं आपके पति जो कि अच्छे वैद्य भी थे और जिन्होंने 'वैद्यमनोत्सव' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, दैव वशात् क्षय-रोग ग्रसित हो गए अतः आपके उपचार के लिए उन दिनों घर के आंगन में एक बकरा बँधा रहता था क्योंकि आयुर्वेद के अनुसार क्षय-रोग के रोगी को उससे बहुत कुछ लाभ होते सुना गया है।

एक तो ये महानुभाव अच्छे विद्वान् और कवि दूसरे अच्छे वैद्यराज, तीसरे तरुण अवस्था ऐसी दशा में भी रुग्ण हो जाने से संसार की असारता पर घृणा और वेदान्त की ओर अभि-रुचि हो जाना स्वाभाविक ही है सो अन्त में हुआ भी वही और उसका परिचय पाठकों को भी किस अनूठे ढंग से मिलता है देखिए।

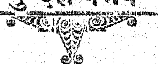
एक दिन आंगन बुहारते समय आपकी धर्मपत्नी के पैर पर बकरे ने पैर रख दिया उसी समय किसी कार्य्य से वैद्यराज महोदय भीतर आए तब ही आपकी धर्मपत्नी ने निम्नलिखित सवैया पतिदेव को सुनाते हुए बकरे को लक्ष्य करके कहा:—

जैहै सबै[1] सुधि भूल तबै,
जब नेंकहु[2] दृष्टि दै मोते चितै है।
भूमि में आँक बनावत मेंटत,
पोथी लए सबरो[3] दिन जैहै॥
दुहाई ककाजू की साँची कहौं
गति पीतम की तुमहूँ कहँ दैहै।
मानों तो मानों अबै अजिया सुत[4]
कैहों ककाजू सों तोहिं पढ़ै है॥

---

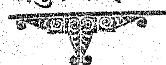
१ सबै = सब ही। २ नेंकहु = थोड़ी भी। ३ सबरो = सब ही।
४ अजिया सुत = बकरा।

अनुक्रमणिका













अनुक्रमणिका



शुद्धाशुद्ध-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६	१७	मनुष्य चित्त	मनुष्य के चित्त
२७	१०	निर्वोदि	निर्वेदादि
४२	६	मैथिलीकरण जी	मैथिलीशरण जी
४७	१४	नाच	नचा
६०	७	दैदीप्यमान	देदीप्यमान
६२	२२	खड्गराम	खड्गराय
६४	६	वल्देव, वर्मा	वल्देव वर्मा
६५	२४	प्रचारणी	प्रचारिणी
७४	१५	गिरे	गिरै
७४	१७	अवे	अवै
७५	२	वृज	व्रज
८६	११	कास	कागा
९१	२०	घर	धर
९६	६	फिर भी	किन्तु
१२२	६	जाने कल्पना	जाने की कल्पना
१२२	१५	काम	करम
१२७	१७	विना	बिना
१३३	१	मौर	मौन
१४७	३	दीज	दीजै
१५२	११	(७) डूषण विचार	(७) दूषण विचार
१५३	२	चन्द्रका	चन्द्रकर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५९	२२	महाराज शाह	महाराज मधुकरशाह
१६०	२४	यह यह	यह
१६७	१	आग	आगे
१६८	१	सी	सो
१७५	१	रहाम	रहीम
१७८	१३	युक्ति	उक्ति
१७३	५	युक्ति	उक्ति
१७६	३	युक्ति	उक्ति
१८३	६	× × ×	चतुर्थ पंक्ति के पश्चात् यह चिह्न बनाइए
१९२	६	पतितों	पतित
२४०	१५	डोंगारसिंह	डोंगरसिंह
२४७	१३	नहीं	नई
२४३	१३	स्रीफल	श्रीफल
२४३	२३	स्रीफल	श्रीफल

नोट—(१) पृष्ठ ६८ पर द्वितीय पंक्ति में अप्रकाशित ग्रन्थ पारिजात-हरण से पूज्य प्रदर्शन तक प्रेस की भूल से छप गए हैं। उन्हें ६३ पृष्ठ पर ६ वीं पंक्ति में साहित्यालङ्कार बा० द्वारिकाप्रसादजी गुप्त रसिकेन्द्र के अप्रकाशित ग्रन्थों में रहना चाहिए।

नोट—(२) पृष्ठ ७१ पर द्वितीय पंक्ति में और पृष्ठ १०३ पर ३ वीं पंक्ति में राजा खलकसिंह खनियाँधाना नरेश का नाम और बढ़ा लीजिए।

ग्रन्थकार की अन्य रचनाएँ
(प्रकाशित ग्रन्थ)

१—सुकवि-सरोज (प्रथम भाग)—महाकवि श्री पं० बलभद्रजी मिश्र, कवीन्द्र पं० केशवदासजी मिश्र, कविवर बिहारीदासजी मिश्र आदि १६ कवियों के प्रामाणिक जीवन-चरित्रों उनकी सुन्दर रचनाओं और ग्रन्थों आदि के विवरण-सहित।

टाइटिल-पृष्ठ पर कवीन्द्र केशव का सुन्दर चित्र और भीतर विस्तृत वंश-वृक्ष है। पृष्ठ-संख्या लगभग २०० होते हुए भी मूल्य केवल १) एक रुपया है। विद्वानों ने इसकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है और अखिलभारतवर्षीय विद्वत्-सम्मेलन, अलीगढ़ ने अपनी हिन्दी-साहित्य की प्रथमा, विशारद और हिन्दी-साहित्य भूषण की परीक्षाओं में इसके दोनों भागों को रक्खा है। छपाई-सफ़ाई बहुत ही सुन्दर द्वितीय संस्करण छप रहा है। सहस्रों में से इस पर कुछ सम्मतियाँ देखिए—

साहित्यरत्न श्री पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय हरिऔध प्रोफेसर हिन्दू-युनिवर्सिटी बनारस, सभापति हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

............आपका संग्रह सुन्दर हुआ है, साथ ही मनोहर भी है। इसमें कई ऐसे सज्जनों की कविता संग्रहीत है, जिनसे हिन्दी-संसार अब तक परिचित नहीं। आपने उनको नव-जीवन प्रदान कर बड़ा सत्कार्य किया है। आपका उद्योग प्रशंसनीय और अभिनन्दनीय है।

विद्यावाचस्पति श्री पं० शालग्रामजी शास्त्री, साहित्याचार्य विद्याभूषण, वैद्यभूषण कविराज लखनऊ—

...आपका उत्साह, अध्यवसाय और परिश्रम प्रशंसनीय है। कई विवेचनीय विषयों का सन्निवेश इस पुस्तक में बड़ी योग्यता और सफलता के साथ किया गया है। अनेक नई ज्ञातव्य बातें इस पुस्तक से हिन्दी-संसार के सामने आई हैं...... । हम आपके परिश्रम का हृदय से अभिनन्दन करते हैं...... ।

श्री पं० कन्हैयालालजी मिश्र बी० ए० पूर्व मन्त्री महाराजा बहादुर बलरामपुर, सभापति सनाढ्य-महामंडल, आगरा—

.....Both from the Sanadhaya—Jatis and the literary point of view "Sukavi-Saroj" is a book of Historical research and deserve every encouragement from the Educated public in General and the Sanadhaya Brahmans in Particular.

श्री० राजा खलकसिंहजू देव अधिपति खनियाँधानाराज्य—

'सुकवि-सरोज' ने हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है...... । आपका यह कार्य सर्वथा सराहनीय है।

श्रीमान् मुंशी अजमेरीजी 'प्रेम' चिरगाँव, राजकवि ओरछा राज्य—

परम प्रवीनता की पाँखुरी पुनीत पूरी,
प्रेम रससानी सरसानी छवि छन्द तें;
मृदुता मनोग्य मनभाई मंजु माधुरी है,
स्वाद में सुधा-सी मिष्ठ मिसरी के कन्द तें।

प्रचुर पराग अनुराग भरे भावन को,
भावन को रंग रच्यौ सौरभ अमन्द तें;
मुदित भयो है मन मधुप हमारो मित्र,
ओज वारे सुकवि-सरोज-मकरन्द तें।
प्रिय पराग, मकरन्द मृदु, अमल अनूपम ओज;
साहित सर सुरभित करन, सुन्दर 'सुकवि-सरोज'।

कविरत्न श्री० पं० अखिलानन्दजी शर्मा पाठक, अनूपशहर—

…इसका अनुपम सौरभ, लोकोत्तर माधुर्य तथा अलौकिक पराग प्रत्येक सहृदय के लिए हृदयग्राही होगा। जीवन-चरित्र भारत का गौरव बढ़ाने वाले हैं, भारतीयों में नवजीवन के प्रसारक हैं, जातीय जीवन के स्तम्भ हैं, ऐतिहासिक जगत् के उज्ज्वल रत्न हैं…। इस ग्रन्थ को लिखकर आपने प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य का तथा सनाढ्य-जाति का बड़ा उपकार किया है…। मैं साहित्य-सेवियों से विशेषतः अपने सजातीय सनाढ्य भाइयों से बल-पूर्वक अनुरोध करता हूँ कि वे इस ग्रन्थ को मँगाकर अपना गृह, साथ ही अपना हृदय-मन्दिर अवश्य अलंकृत करें। धनाढ्य सनाढ्यों से मेरा निवेदन है कि वे इस ग्रन्थ की अधिक संख्या में प्रतियाँ मँगाकर जातीय जीवन-स्तम्भ में सहायता दें।

श्री० पं० बिनायकप्रसादजी सीरौठिया, बी० ए० काम० (मैनचेस्टर) एफ० आर० ई० एस० (लंदन) इम्पीरियल बैंक, शोलापुर—

……पुस्तक खोज व परिश्रम के साथ लिखी गई है और प्रत्येक सनाढ्य व कविता-प्रेमी के लिए संग्रह की वस्तु है। पुस्तक सर्वाङ्ग-सुन्दर है।

श्री० पं० मुरलीधरजी मिश्र बी० ए०, एल-एल० बी० लखीमपुर, सभापति सनाढ्य-महामंडल, आगरा—

······सनाढ्य कवियों को जनता के सम्मुख लाने में आपने श्लाघनीय कार्य किया है।

श्री० बा० गुलाबरायजी एम० ए०, एल-एल० बी० पूर्व दीवान छत्तरपुर-राज्य—

······यद्यपि कवियों का चुनाव सनाढय-जाति के सम्बन्ध से किया गया है, तथापि इस ग्रन्थ में हिन्दी के प्रधान कवि प्रायः सभी आ गए हैं। यह बात सनाढय-जाति के लिये बड़े गौरव की है। कविता के चुनाव में बड़ी रुचि के साथ काम लिया गया है·····।

स्व० श्री० पं० ब्रह्मदत्तजी शास्त्री एम० ए०, काव्यतीर्थ, साहित्योपाध्याय, प्रोफ़ेसर मेयो कॉलेज, अजमेर—

······आपका जातीय कवियों के इतिवृत्त तथा उनकी कविताओं के छापने का कार्य अति स्तुत्य है। इससे जातीय कीर्ति तथा सरस्वती-सेवा दोनों ही सम्पन्न होंगे। मैं आपके इस कार्य की और श्रम की सराहना करता हूँ तथा उन्हें अनुकरणीय भी मानता हूँ।

× × × ×

२—श्रीमद्भगवद्गीता का छन्दोबद्ध अनुवाद— एक श्लोक का प्रायः एक ही सरल और सरस छन्द में अनुवाद। मूल्य केवल ।।=) दस आना।

३—सावित्री-सत्यवान—पौराणिक कथा का छन्दोबद्ध मनोहर वर्णन, पुस्तक बड़ी ही शिक्षाप्रद है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पढ़कर इससे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ।)

पद्य-प्रभाकर (प्रथम भाग)—समय-समय पर मासिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ग्रन्थकार के सामयिक उपदेशप्रद पद्यों का संग्रह। मूल्य केवल ।)

५—रामायण के कुछ उपदेश—रामायण के कुछ विशेष उपदेशप्रद स्थलों का कविता में वर्णन। मूल्य केवल =)

६—शिव-तांडव-स्तोत्र—संस्कृत से सरल, सरस हिन्दी भाषा के छन्दों में अनुवाद। अन्त में शिवाष्टक भी है। मूल्य केवल –) एक आना।

(७) सुकवि-सरोज—(द्वितीय भाग) (सटिप्पण सचित्र) गोस्वामी तुलसीदास, नन्ददास, व्यासजी, स्वामी हरिदास, कल्याण, हरिसेवक, अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, शालग्रामजी शास्त्री आदि ४८ कवियों के प्रामाणिक जीवनचरित्रों उनकी सुन्दर रचनाओं और ग्रन्थों आदि के विवरण सहित।

गोस्वामी तुलसीदासजी के तिरंगे और अन्य ११ इकरंगे चित्रों सहित पृष्ठ संख्या ४०० होते हुए भी मूल्य लागत मात्र केवल २॥) ही रक्खा गया है। बढ़िया जिल्द पर सुनहली छपाई वाली प्रति का ३) है। कतिपय जातीय और साहित्यिक संस्थाओं ने इस ग्रन्थ के लेखक को बधाइयाँ भेजी हैं। धुरन्धर विद्वानों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। प्राप्त हुई अनेकानेक सम्मतियों में से कुछ सम्मतियाँ देखिए:—

आचार्य श्री० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—

……सुकवि सरोज के द्वितीय भाग ने मुझे मोह लिया, पुस्तक अनमोल है। वह तो एक रत्न है, उससे बुन्देलखण्ड के कीर्ति कलानिधि की कलाएँ और भी चमक उठेंगी।

रायबहादुर रावराजा श्री० पं० श्यामबिहारी जी मिश्र एम० ए० सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग—

……द्विवेदीजी का यह श्रम अत्यन्त श्लाघ्य तथा मनोरंजक हुआ है और हमें पूर्ण आशा है कि इसके अवलोकन से हिन्दी कविता प्रेमियों को अपार आनन्द प्राप्त होगा……।

साहित्यरत्न श्री० पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' प्रोफ़ेसर हिन्दू यूनीवर्सिटी काशी—

……जिन उपादेय साधनों से कोई ग्रन्थ सुन्दर और लोकप्रिय बनाया जा सकता है आपने उन सब को अपने ग्रन्थ में एकत्रित करके एक उल्लेखनीय कार्य किया है……।

विद्यावाचस्पति श्री० पं० शालग्रामजी शास्त्री, साहित्याचार्य्य विद्याभूषण, वैद्यभूषण, कविराज लखनऊ—

……शिक्षा ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन की प्रचुर सामग्री के साथ ही इसमें आपने अनेक ऐसी बातें भी सामने रक्खी हैं जिनके सम्बन्ध में या तो सर्व साधारण अब तक अपरिचित थे या भ्रान्त धारणा बनाए बैठे थे। आपका यह कार्य्य केवल जातीय दृष्टि से ही नहीं साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी अभिनन्दनीय है।

रायबहादुर डा० हीरालालजी बी० ए० डी०, लिट कटनी—

……पुस्तक का बाह्य जितना सुन्दर और मनोहर है उससे कई गुना उसका भीतरी भाग सुहावना और लुभावना है सनाढ्य कवियों की कविताओं का संग्रह योग्यतापूर्वक किया गया है।

श्री० पं० ज्योतीप्रसादजी उपाध्याय एम० ए० एल-एल० बी० एम० एल० सी० एडवोकेट आगरा—

सुकवि सरोज एक अनमोल पुस्तक है ·····।

कविवर बा० मैथिलीशरणजी गुप्त चिरगाँव (झाँसी)—

आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है इसमें आप सफल हुए हैं आशा है यह प्रयत्न चालू रहेगा। धन्यवाद·······

श्री० मुन्शी अजमेरीजी राजकवि चिरगाँव (झाँसी)—

शंकर सुकवि सरोज को, पायो दूजो भाग।
काव्य-प्रेम धन रावरो, धन स्वजाति अनुराग॥

श्री० पं० रामगोपालजी मिश्र बी० एस-सी० एम० आर० ए० एस० डिपुटी कलेक्टर जौनपुर—

........I congratulate you on the great service done to the literary world in general and the sanadhayas in particular. You will leave a name behind of which all your friends must be proud now and after.

रायबहादुर पं० काशीनाथजी शर्मा एम० ए० मैनेजर कोर्ट आफ़ वार्डस् अयोध्या—

......Some of the articles show great research and are a distinct addition to Hindi literature may I congratulate you on your effort and on the very nice get up of the book.......................

श्री० पं० कृष्णप्रसादजी शर्मा I. C. S. कलेक्टर सहारनपुर—

Pt. Gauri Shankar Dwivedi deserves thanks of the Hindi knowing public in general and of the

Sanadhaya Brahmans in particular for the collection of verses and biographies of eminent poets in the book named Sukavi Saroj. The work must have involved a considerable amount of lavour and research and will be of interest to students of Hindi literature.

श्री०म०कु० देवेन्द्रसिंहजू देव राजाबहादुर ओरछा राज्य—

The book is indeed very well written and is great acquisition to Hindi literature.

श्री० म० कु० बलभद्रसिंहजी राजाबहादुर दतिया राज्य—

......वर्णन शैली हृदयग्राही है द्विवेदीजी ने इस पुस्तक को लिखकर प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य का बड़ा उपकार किया है कविताएँ जो संग्रह की गई हैं बड़ी मनोहर हैं यह ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। द्विवेदीजी का परिश्रम अभिनन्दनीय है।

श्री० पं० झन्नीलालजी पाण्डेय बी० ए० एल० एल० बी० EX. M. L. C. चेयरमेन डि० बो० उरई—

......सरोज का द्वितीय भाग सर्वाङ्ग सुन्दर है। इसके द्वारा आपने हिन्दी संसार की जो सेवा की है उसके लिए वह आपका सदा आभारी रहेगा और केवल कृतज्ञता प्रदर्शित करने के नाते वह 'सरोज' को समुचित आदर देगा...... ।

कविरत्न श्री० पं० अखिलानन्दजी शर्मा पाठक अनूपशहर

......हम प्रत्येक साहित्य सेवी से बलपूर्वक इसके पढ़ने का अनुरोध करते हैं। यह ग्रन्थ भारतवर्ष की पाठ्य प्रणाली में रखने योग्य है और इनाम में देने योग्य अनुपम रत्न है प्रत्येक पुस्तकालय में इसका रहना आवश्यक है...... ।

श्री० पं० रामसेवकजी त्रिपाठी पूर्व माधुरी सम्पादक लखनऊ—

......सुकवि-सरोज साहित्य के लिए अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है मेरा विश्वास है कीमत जानने वाले लोग इसका बड़ा आदर करेंगे। मेरा विशुद्ध अभिनन्दन स्वीकार कीजिए।

श्री० पं० रामरत्नजी अध्यापक रत्नाश्रम आगरा—

......मेरी शुभ-कामना आपके स्तुत्य उद्योग के साथ है आपने परिश्रम और पैसा दोनों बड़े पुण्य-पथ में व्यय किए हैं।

श्री० पं० शिवसहायजी चतुर्वेदी देवरी (सागर)—

......आपने अपने अनवरत अध्यवसाय, अथक अन्वेषण तथा अगाध पाण्डित्य द्वारा जाति के राशि राशि छिपे हुए कविकोविदों को प्रकाश में लाकर जो अमर ज्योति प्रदान की है उसके लिए आपकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है आपकी यह कृति समग्र साहित्य जगत् में समादरणीय होगी।

श्रीमती राजरानीजी मिश्र धर्मपत्नी श्री० पं० रामगोपालजी मिश्र बी० एस-सी० डिपुटी कलेक्टर जौनपुर—

......सुकवियों के जीवन चरित्र विषयक खोज में जो परिश्रम किया गया है वह सराहनीय है। तुलसीदास जी तथा श्री केशवदासजी की जीवनी से तो ऐतिहासिक साहित्य का बड़ा ही उपकार हुआ है। सरोज अति सुन्दर और सराहनीय है।

श्री० पं० जमुनाप्रसादजी गोस्वामी साहित्य रत्नाकर जबलपुर—

......आपने अत्यन्त सराहनीय कार्य्य किया है...... पुस्तक सर्वाङ्ग सुन्दर है।

× × × × ×

बुन्देल-वैभव

अथवा

बुन्देलखण्ड के हिन्दी कवियों का साङ्गोपाङ्ग इतिहास

(सचित्र और सटिप्पण)

प्रथम भाग आपके हाथ ही में है।

इस पर प्राप्त हुई अनेकों सम्मतियों में से कुछ सम्मतियाँ—

रायबहादुर राजराजा श्री० पं० श्यामबिहारीजी मिश्र एम. ए. सभापति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग—

······कवियों के जीवन चरित्र एवं कवित्व शक्ति की विवेचना करने में द्विवेदी जी ने अच्छा श्रम किया तथा पूर्ण सफलता पाई है, ऐसे ही कविताओं के उदाहरण चुनने में आपने अपनी काव्य पटुता का खासा परिचय दिया है। निदान यह ग्रन्थ-रत्न संग्रह करने योग्य बन पड़ा है और इसके पढ़ जाने से कोई मनुष्य हिन्दी-साहित्य का ज्ञाता माना जा सकेगा।

मेजर श्री० पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद जी पाण्डेय बी० ए० एल-एल० बी०, एम.आर० ए० एस० एफ० आर० ई० एस० दीवान ओरछा राज्य—

······ग्रन्थ को बहुत परिश्रम से निर्माण कर हिन्दी भाषा की और विशेषकर बुन्देलखण्ड की ऐसी चिरस्थायी सेवा की है जो सर्वथा सराहनीय है।

श्री० पं० अश्विनी कुमार जी पाण्डेय बी० ए० होम मिनिस्टर ओरछा राज्य—

······यह ग्रन्थ कविता, इतिहास तथा भाषा विज्ञान के सुन्दर समिश्रण से ओत प्रोत है।

कविवर श्री० बा० मैथिलीशरणजी गुप्त चिरगाँव (झाँसी)—

······द्विवेदीजी ने जो कठिन कार्य्य किया है उसके लिए साहित्य प्रेमी उनके कृतज्ञ रहेंगे और बुन्देल-वैभव हिन्दी साहित्य की वैभव-वृद्धि करेगा।

साहित्यालङ्कार कवीन्द्र बा० द्वारिकाप्रसादजी गुप्त 'रसिकेन्द्र' कालपी—

(वसन्त तिलका)

रत्न-प्रसू धरणि के चुन काव्य रत्न-
सानन्द 'शङ्कर' सजे जिसमें सयत्न,
पाए भला न फिर गौरव क्यों अनन्त,
'बुन्देल-वैभव' सुग्रन्थ प्रकाशवन्त।

श्री पं० सुरेन्द्रनारायणजी तिवारी बी० ए० एल-एल० बी० सिविल एण्ड सेशन जज ओरछा राज्य, सभापति 'परिषद्'—

हिन्दी-संसार में यह पुस्तक आपकी चिर स्मारक रहेगी और वह आपका इसके लिए कम आभारी न रहेगा।

श्री० राजा खलकसिंहजू देव खनियाधाना-नरेश—

······अमर कीर्ति के रूप में रहेगी और हमारी मातृ-भाषा के साहित्य भण्डार का यह एक अमूल्य रत्न होगा······अधिक क्या कहें इस महान् कार्य्य के लिए हम श्री द्विवेदी जी की सेवा में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

कैप्टेन कुं० शिववरनसिंह जी यादव A.D. C. to Maharaja Orchha and सुपरिंटेंडेंट पुलिस ओरछा राज्य—

······हिन्दी-संसार इस ग्रन्थ-रत्न के लिए उनका ऋणी है ······ग्रन्थकार ने प्राचीन कवियों के अन्वेषण में बहुत बुद्धि-

मानी, कला एवं परिश्रम से कार्य्य किया है......यह ग्रन्थ-रत्न राष्ट्र की एक अतुलनीय सम्पति होगी।

श्री० पं० जयकृष्णदेवजी बी० ए० एकाउंट्स एण्ड ट्रेजरी ऑफ़िसर ओरछा राज्य प्रधान मंत्री परिषद्—

इससे पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों में बुन्देलखण्डांतर्गत कवियों की इतनी विशालकाय नामावलि का सोदाहरण उल्लेख मिलना असम्भव है, यह आपकी निरन्तर खोज का प्रतिफल है। पुस्तक परीक्षोपयोगी भी है।

श्री० बा० गुरुचरणलालजी बी० ए० (पूर्व डाइरेक्टर आफ़ ऐजूकेशन) ओरछा राज्य—

......यह ग्रन्थ आपकी असाधारण साहित्यिज्ञता और प्रशंसनीय विद्या-व्यसन का परिणाम है। मुझे विश्वास है समस्त हिन्दी संसार इसे सम्मानित करेगा। मेरी यह कामना है कि यह विशाल ग्रन्थ हिन्दी की समस्त संस्थाओं और विद्वानों के पुस्तकालयों में विद्यमान रहे।

श्री० पं० वासुदेवजी शुक्ल बी० ए० साहित्यरत्न पटना—

......ग्रन्थ वास्तव में 'बुन्देल-साहित्य-संसार' का सूर्य एवं ग्रन्थकर्त्ता के चिन्तन-मनन तथा अन्वेषण का ज्वलन्त उदाहरण है।

श्री० पं० गङ्गासहायजी पाराशरी 'कमल' एम० आर० ए० एस० बरेली—

......पुस्तक अद्वितीय है और यह एक ही पुस्तक साहित्य-संसार में आपको अमर बनाने में समर्थ होगी।

श्री० बा० राजवल्लभसिंहजी बी० ए० मनेर (पटना)—

.......इस ग्रन्थ निर्माण में उनके अथक परिश्रम के लिए हिन्दी संसार उनका चिर कृतज्ञ रहेगा।

श्री० पं० ठाकुरदासजी जैन बी० ए० मन्त्री
वीर दि० जैन-पाठशाला पपौरा—

यह महान् ग्रन्थ हिन्दी-संसार की एक चिरस्थायिनी, अमूल्य और रक्षणीय सम्पत्ति होगी और इसमें अनेक नवीन ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ज्ञातव्य विषयों का सद्भाव सामान्यतः समस्त हिन्दी संसार और विशेषकर विद्वानों, हिन्दी-प्रचारकों तथा परीक्षक संस्थाओं द्वारा सम्मानित होगा।

श्री० पं० सच्चिदानन्दजी उपाध्याय 'आशुतोष' विशारद—

वास्तव में 'बुन्देल-वैभव' अप्रतिम एवं असाधारण प्रतिभा-पूर्ण रत्नों का एक सुचारु समुच्चय है।

—:*:—

यह ग्रन्थ ५, ७ भागों में प्रकाशित हो रहा है। आठ आना प्रवेश शुल्क भेजकर अभी से स्थायी ग्राहक बनने वाले महानुभावों को सभी ग्रन्थ पौने मूल्य में प्राप्त हो सकेंगे। शीघ्र ही ग्राहक बनकर मातृ-भाषा के प्रचार में हमारा हाथ बँटाने की कृपा कीजिए। इस 'ग्रन्थमाला' के सर्वाङ्ग सुन्दर ग्रन्थ होते हुए भी उनका मूल्य लागत-मात्र ही रक्खा जाता है। विशेष जानने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिए।

व्यवस्थापक—
'बुन्देल-वैभव-ग्रन्थमाला'
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)

